# महिला-मण्डल

लेखक—

श्री बैजनाथ केडिया

प्रकाशक—

हिन्दी पुस्तक एजेंसी,

२०३, हरिसन रोड,

कलकत्ता।

प्रथम संस्करण ]　　सन् १९३८　　[ मूल्य १।)

# भूमिका

हिन्दी साहित्यके प्रकाशनके क्षेत्रमें हिन्दी-पुस्तक-एजेन्सी-का क्या स्थान है यह मुझे बतानेकी आवश्यकता नहीं, उसके नाते तो केडियाजीको प्रायः सभी साहित्य सेवी भलीभांति जानते रहे हैं परन्तु अब धीरे धीरे लेखकके रूपमें भी वे हिन्दी संसारके सम्मुख आ रहे हैं। निस्सन्देह यह एक तथ्य है कि एक साथ ही प्रकाशक और लेखक होना असम्भव कल्पना है। परन्तु इसीके साथ यह भी एक अनिवार्य नियमसा है कि सिद्ध प्रकाशकको एक अंशतक लेखक होना ही चाहिये, इसी प्रकार एक सिद्ध लेखकको भी प्रकाशनका ज्ञान थोड़ासा तो रखना ही चाहिये।

'महिला-मण्डल' केडियाजीकी एक नयी रचना है। जिन लोगोंका केडियाजी से कुछ घनिष्ट सम्बन्ध रहा है वे यह भली भांति जानते हैं कि केडियाजी न केवल एक सिद्ध व्यवसायी ही हैं वरन कुशल समाज तथा राष्ट्र सेवक भी हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी इसी लगनका परिणाम है। आये दिन होनेवाले अनेक प्रकारके सामाजिक अत्याचार और अनाचार किसके हृदय को व्यथित नहीं करते ? और फिर एक सच्चे समाज सेवक को उनके द्वारा चोट लगना तो और भी स्वाभाविक ही है। 'महिला मण्डल' में केडियाजी ने वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, विधवा विवाह, दूषित शिक्षा प्रणाली इत्यादि प्रश्नों पर बड़े ही सुलझे ढंगसे विचार किया है। इस छोटीसी पुस्तकमें जितने भी प्रश्न उपस्थित किये गये हैं वे प्रायः इतने साधारण हैं कि किसी दिन किसी भी घरमें देखे जा सकते हैं। कन्या

और पुत्रके-लालन–पालनमें भेद दृष्टि कितनी भी निन्दनीय क्यों न हो परन्तु घरोमें प्रायः देखी ही जाती है। वृद्धविवाह और अनमेल विवाहके परिणाम स्वरूप कितने घर बरबाद नहीं हो चुके यह कौन नहीं जानता ? कुशिक्षा प्रणाली कितनोंको नहीं ले डूबी ? ये सारे प्रश्न समाजको सुलझाने ही होंगे यदि उसे पतनके गर्तसे उठना है तो। इन्हीं प्रश्नोंको लेकर अनुभवी लेखकने बड़ी मार्मिक समालोचना की है। "नव-युवक ही नहीं; बेटी कहनेवाले चाचा और बाबा भी मेरी ओर ललचाई दृष्टिसे ही देखते मालूम होते थे" लेखकके ये शब्द कितनी गहरी चोट करते हैं तथा सामाजिक पतनकी गम्भीर समालोचना करते हैं यह पाठकोंसे छिपा न रह सकेगा, हो सकता है इस पुस्तकमें समालोचकोंको 'अश्लीलता' की गन्ध मिले। परन्तु उन्हें स्मरण रखना होगा कि किसी भी साहित्य में एक हदके बाहर 'अश्लीलता' का निर्णय वर्णित वस्तुपर नहीं होता वरन लेखककी आन्तरिक भावना पर, उसकी मनोवृत्ति पर होता है। सम्भव है कि अपरिपक्व बुद्धि पर कुछ ऐसे वर्णनोंका प्रभाव अच्छा न बैठे परन्तु ऐसी वस्तुएं वास्तवमें उनके लिये हैं ही नहीं ; वरन इनकी अपील तथा इनका लक्ष्य तो उनकी ओर है जो भुक्त भोगी हैं : जिनके विचारोंमें प्रौढ़ता आचुकी है तथा जिनकी दृष्टिमें एक संकल्प है।

आशा है हिन्दी संसार इस नवीन कृतिका उचित स्वागत करेगा तथा इसके द्वारा समाज और राष्ट्रकी कुछ न कुछ सेवा अवश्य होगी।

कलकत्ता विश्वविद्यालय — ललिता प्रसाद सुकुल

२० जनवरी १९३८

# महिला-मण्डल

# पहली बैठक

श्रीमती चम्पा लगातार एक साल कठिन परिश्रम करनेके बाद अब जाकर कहीं अपनी सहेलियोंकी "महिला-मण्डल" नामकी एक सभा स्थापित करनेमें सफल हुई हैं।

यद्यपि अभीतक सब मिलाकर दस बारह ही सदस्या बनी हैं तथापि सभी उत्साह और लगनसे काम करने-वाली हैं।

आज सोमवारका दिन है। आज ही सभाकी पहली बैठक श्रीमती चम्पाके मकानपर दिनके एक बजे होनेवाली है। वे सवेरेसे ही अपने दैनिक कामोंको यथाशीघ्र समाप्त करलेनेमें लगी हुई हैं, उनके पति हाईकोर्टमें वकालत करते हैं, इसलिये ठीक दस बजे वे खा-पीकर अदालत चले

जाते हैं। वे उन्हें यथासमय भोजनकराके आप भी खा-पीकर रसोईका काम पूरा कर चुकी हैं; यहाँतक कि सखियोंके लिये जलपानका भी पूरा प्रबन्ध कर लिया गया है।

बैठकखानेमें यथास्थान सब चीजोंको सहेजकर बीचमें सभानेत्रीके लिये एक छोटासा आसन बिछा दिया गया है। सामने एक छोटी मेज रख दी गयी है और उसपर लिखने-पढ़नेकी सभी आवश्यक वस्तुएं बड़े करीनेसे रखी हैं।

एक बजते-बजते प्रायः सभी सदस्याएँ आ उपस्थित हुईं। सबके चेहरे खिले हुए हैं। उनकी ओर देखनेसे ही यह बात भली भाँति मालूम हो जाती है कि इनमें काफी उत्साह है और उसके पीछे काम करनेकी सद्भावना भी मौजूद है।

सभानेत्रीके आसनको बीचमें खाली छोड़कर चारों ओर सबके यथास्थान बैठ जानेपर श्रीमती जयन्तीने प्रस्ताव किया कि "सबसे पहले हमें अपने लिये किसी बहिनको सभानेत्री चुन लेना आवश्यक है, जो अपनी योग्यतासे सभाका कार्य अच्छी तरह चला सकें। मेरी रायमें श्रीमती कमलादेवी इस पदके लिये सर्वथा योग्य

हैं। आशा है कि आप सब मेरे इस प्रस्तावको स्वीकार करेंगी।"

श्रीमती तारादेवीने इसका समर्थन किया और सर्व-सम्मतिसे श्रीमती कमलादेवीने सभानेत्रीका आसन ग्रहण किया।

मन्त्रीका पद श्रीमती चम्पादेवीको ही स्वीकार करना पड़ा। श्रीमती चम्पाका आग्रह था कि श्रीमती दयादेवी इस पदको स्वीकार कर लें; परन्तु उन्होंने सहकारी मंत्री-के पदपर रहकर ही काम करना उचित समझा।

श्रीमती चम्पाने संयोजिकाके नाते सभाका कार्य आरम्भ करनेके पहले उपस्थित सब सदस्याओंका अभि-वादन किया और सभाका उद्देश्य बताते हुए कहा:—

"बहनो, गाड़ीके दो पहिये होते हैं और दोनों एक समान। यदि एक छोटा अथवा कमजोर होगा तो गाड़ी ठीक नहीं चल सकेगी। इसी तरह गृहस्थी-रूपी गाड़ीके स्त्री और पुरुष-रूपी दो पहिये हैं। यदि उनमेंसे एक छोटा या कमजोर हो, तो गृहस्थी कभी सुचारु रूपसे नहीं चल सकती।"

"आज हमारी स्त्री-जाति इतनी दुर्बल और अपा-हिज हो गयी है कि वह बिना पुरुषोंकी सहायताके एक

साधारण काम भी नहीं कर सकती और गृहस्थी-रूपी रथके संचालनमें पुरुषोंकी सहायता करनेके बदले उनके बन्धनका कारण बनी हुई है।"

"यह बात नहीं है कि पुरुष-समाज हमें ऊँचा उठानेका प्रयत्न नहीं करता, पर जबतक हम अपने पाँवोंपर आप खड़ी होनेको तैयार नहीं हो जायेंगी, तबतक उनके किये कुछ भी न हो सकेगा। हम अपने पतियोंकी, अपने समाजकी, एवं अपने देशकी योग्य सहायिका किस प्रकार बन सकती हैं, यही बात विचारनेके लिये आज आपको यहाँ आनेका कष्ट दिया गया है। आशा है, आप इस विषयका खूब मनोयोग-पूर्वक विचार करके कोई ऐसा उपाय सोच निकालेंगी कि जिससे हमारी यह त्रुटि बहुत शीघ्र दूर हो जाय।"

श्रीमती चम्पाका भाषण समाप्त हो जानेके बाद श्रीमती कमलादेवीने सभानेत्रीकी हैसियतसे कार्य आरम्भ करते हुए कहा कि यदि आप सबको यह बात जँच जाये कि हमलोग सबसे पहले अपनी-अपनी बातें हृदय खोल-कर अपनी सहेलियोंके सामने कह जायें तो भविष्य-का कार्यक्रम ठीक करनेमें हमें सुभीता मिलेगा साथ ही परस्परमें घनिष्ठता भी विशेष रूपसे स्थापित हो जायगी। जबतक हम अपनी सहेलियोंके सामने अपने सुख-

दुःखकी बातें यथार्थ रूपसे न रखेंगी, तबतक न तो हम अपना ही सुधार कर सकेंगी और न दूसरी बहिनोंका ही।

सभानेत्रीजीके इस प्रस्तावको सबने सहर्ष स्वीकार करते हुए उनसे अनुरोध किया कि "आप ही सबसे पहले अपनी "बीती" कहिये, ताकि अन्य सदस्याओंको भी अपनी "बीती" कहनेके लिये पर्याप्त प्रोत्साहन मिले।"

श्रीमती कमलादेवीने सबका आग्रह देखकर अपनी "बीती" को इस प्रकार कहना आरम्भ किया,—

"प्रिय बहनो!

यह बात आप लोगोंसे अवश्य ही छिपी नहीं है कि हमारे यहाँ एक ही माताके गर्भसे उत्पन्न होनेपर भी बहिन-का आदर भाई-का-सा नहीं होता। मेरे बड़े भैया मुझसे सिर्फ दो साल बड़े हैं। पहलेकी बात तो याद नहीं, पर जब मैं पाँच-छः सालकी हुई, उस समय भैया स्कूलमें पढ़ने जाया करते थे, मैं भी कन्या-पाठशालामें जाने लगी। भैयाके लिये दोनों समय अध्यापक घरपर भी पढ़ानेके लिये रख दिये गये; पर मेरे लिये एक भी नहीं रखा गया। माताजी ही अपने अवकाशके समय जो कुछ थोड़ा-बहुत बता देती थीं, मेरे लिये वही यथेष्ट समझा जाता था।

"यद्यपि घरके अन्य लोगोंसे मुझे भैया अधिक प्यारे

लगते थे और वे भी मुझे कम प्यार नहीं करते थे; पर हर बातमें मेरे और उनके साथके व्यवहारमें घरवालोंका भेद-भाव देखकर मेरे दिलमें एक प्रकारकी चोट-सी लगती थी, यहाँतक कि खाने-पीनेमें भी माताजी भैयाकी ही विशेष रूपसे देख-भाल रखती थीं। मैंने खाया तो खा लिया, न खाया तो वे कभी ध्यान ही नहीं देती थी; पर भैयाके लिये दो-चार मिनटकी देर हो जानेसे ही नौकरोंकी शामत आ जाती थी। वस्त्र-आभूषणोंके विषयमें भी यही बात थी। भैयाके लिये किसी बातका अभाव नहीं था। उनके बिना माँगे ही सब चीजें हाजिर रहती थीं; पर मैं यदि किसी आवश्यक चीजके लिये भी बार बार कहती तो उसपर भी बहुत कम ध्यान दिया जाता था।"

"ऐसी ही परिस्थितिमें रहकर धीरे-धीरे मेरा मन यह स्वीकार करने लगा कि मेरे और भैयाके बीचका भेदभाव उचित ही है; क्योंकि आगे चलकर भैया तो इस घरके मालिक बनेंगे और मैं—घरवालोंका बहुत कुछ ले-देकर दूसरे घर चली जाऊँगी। यद्यपि माताजी भी अपने बच-पनमें मेरी तरह ही सोचती-समझती रही होंगी, तथापि आज घरकी मालकिन बन जानेके बाद अपनी उस दयनीय स्थितिको वे बिलकुल ही भूल गयीं हैं।

"धीरे-धीरे मैं सयानी हो चली, :अब मेरा पाठशाला जाना भी बन्द कर दिया गया। माताजीको मुझे रसोई बनाना, कपड़े सीना आदि सिखानेकी विशेष आवश्यकता प्रतीत होने लगी। अब वे पिताजीसे मेरे विवाहके सम्बन्ध-में भी बीच-बीचमें कहने-सुनने लगीं।"

"पिताजीकी स्थिति अच्छी थी। मेरे लिये सम्बन्धकी क्या कमी थी? सम्बन्धकी कमी तो वहाँ रहती है, जहाँ देने-लेनेकी सम्भावना कम रहती हो। पिताजी सिर्फ इसो-लिये चुप्पी साधे हुए थे, कि खर्चका काम जितने दिनों तक टाला जा सके, टाला जाय। अन्तमें माताजीकी विशेष कहा-सुनीके कारण मेरा सम्बन्ध स्थिर हो गया। पतिदेव उस समय मैट्रिक पास करके कालेजमें भर्ती हो चुके थे। मेरे ससुरजी अच्छे विचारोंके थे, अतः उन्होंने दहेजके विषयमें कुछ मोल-तोल नहीं किया। यह प्रश्न पिताजीकी इच्छापर ही छोड़ दिया। पिताजीने भी माता-जीकी सलाहसे जी खोलकर दहेज दिया। इस समय-का माताजीका रुख देखकर मुझे बहुत आश्चर्य हो रहा था। जो माताजी भैयाके सामने मुझे कुछ भी महत्व नहीं देती थीं वे ही अब रात-दिन मेरे लिये तरह-तरहकी चीजें जुटानेमें व्यस्त रहने लगीं। इस समय न तो पिता-

जीकी ही ओर उनका ध्यान था और न भैयाकी देख-भाल करनेका ही उन्हें अवकाश था। उनका तो सिर्फ एक ही लक्ष था और वह था मेरे विवाहके लिये नाना प्रकारकी वस्तुओंका संग्रह करना।"

"अबतक घरमें मैं उपेक्षाकी दृष्टिसे देखी जाती थी, पर अब क्या घरवाले और क्या बाहरसे आने-जानेवाले सभीके लिये मैं ही एक मात्र लक्ष बनी हुई थी। बहिनो! आज हम सब प्रायः एक-सी ही लग रही हैं। पर उस समय जो भी मुझे देखता, मेरी सुन्दरताकी प्रशंसा करने लगता। उस समय मैं तो इतनी लजा जाती कि सर ऊँचा करना भी मेरे लिये कठिन हो जाता।"

"इसी तरह करते-धरते विवाहका दिन भी आ पहुंचा, बड़े ही उत्साहके साथ बरात आयी, फेरे हुए, सम्बन्धियोंका प्रीतिभोज हुआ, अन्तमें बिदाईका समय आया। यह बात नहीं थी, कि मुझे विवाह-सम्बन्धी इन कार्योंमें कम दिलचस्पी थी। मेरा रोम-रोम खिल रहा था, चाहे अन्य घरवाले मेरे इस भावको न जान सके हों, पर हमजोलियों अथवा पड़ोसकी सहेलियोंसे मेरी खुशी छिपी नहीं रह सकी। पर मैं नहीं जानती थी कि जिस बातके लिये मुझे खुशी हो रही है, उसे प्राप्त करनेके लिये मुझे

एक ऐसी परिस्थितिका भी सामना करना पड़ेगा जो मेरे जीवनमें एक बड़ा भारी परिवर्तन उपस्थित कर देगी।"

"अन्तमें दूसरे घर जानेका समय आ ही गया। जो माताजी अबतक बड़े उत्साहके साथ सब वैवाहिक कार्यों-को कर रही थीं, एकाएक बेचैन-सी हो उठीं। मेरा मन भी न जाने क्यों, उस आनन्दमय अवसरके समयमें अकस्मात् मेघाच्छन्न हो गया। माताजी जब मुझे बिदा करने लगीं, तब दो-चार शब्दोंमें उन्होंने मुझे उपदेशके रूपमें कहा,'बेटी कमला! आजतक तुम मेरी थी, पर आज मैं इच्छापूर्वक तुम्हें दूसरेके हाथों सौंप रही हूँ। अबसे हम लोग तो दूसरे और ये लोग तुम्हारे अपने हो जायँगे। तुम समझती रही होगी, कि बचपनमें मैंने तुम्हारी बहुत कम परवाह की थी; पर ऐसी बात नहीं थी। माँको तो लड़के-से लड़की कहीं अधिक प्यारी होती है; पर बेटी, यदि मैं तुम्हें उस समय केवल लाड़-प्यारमें रखती और सहनशील न बनाती तो आज मुझे तुम्हें बिदा करते समय इतना सन्तोष न होता। यद्यपि मैं अपने हृदयके टुकड़ेको दूसरे-को सौंप रही हूँ, तथापि मुझे इस बातका गर्व है कि तुम्हारी सास यह बात कभी न कह सकेगीं कि मैंने उन्हें कोई अयोग्य वस्तु भेंट की है। माताजीने ये उद्गार

पतिदेवके सामने ही निकाले थे। मैंने अनुभव किया, कि इन बातोंको सुनकर उनका हृदय भी गद्गद् हो गया। मेरी हालत तो ऐसी हो गयी मानो मैं मरकर किसी दूसरे लोकमें जा रही हूँ। बड़ा ही करुणापूर्ण दृश्य था। इसके पहले मैंने उस तरहके हृदय विदीर्ण करनेवाले अव-सरका सामना कभी नहीं किया था। यद्यपि आजके वर्तमान सुखकी नींव उसी दिन पड़ी थी, पर उस समय तो छाती फटी जा रही थी। लोग कहा करते हैं, कि लड़कियोंका उस समयका रोना-धोना अधिकांशतः दिखावटी होता है; परन्तु असलमें उनकी इस तरहकी धारणा बहुत ही भ्रान्तिपूर्ण है। यह अनुमान करनेका विषय नहीं है, इसका अनुभव तो भुक्तभोगी ही कर सकता है।"

"माता और पिता, कुटुम्ब और परिजनोंको रुलाकर मैं भी रोते-रोते, सिसकियाँ भरते-भरते, अपने भविष्यके—परलोक तकके साथी पतिदेवकी पदानुगामिनी होकर घरके द्वारसे, उस घरके द्वारसे, जिसको उस दिनतक मैं अपना ही समझ रही थी, बाहर निकल आयी।"

"मेरे और माताजीके विषादमय हृदयको छोड़कर अन्य बन्धु-बान्धवोंने हम लोगोंको हँसी-खुशी विदा किया। रास्तेमें पतिदेवने दो-चार बार मुझे सान्त्वना

देनेका प्रयत्न किया ; पर उस समय परिजनोंके वियोगके कारण मेरा हृदय पानीके रूपमें बरबस आंखोंसे उमड़ा पड़ रहा था।"

"इसी तरह रोते-रोते जब मेरा हृदय कुछ हलका हुआ, अपने कर्तव्यकी ओर ध्यान गया, तब मैंने सोचा—यह तो भगवानकी रचना है। माताके गर्भसे विवाह पर्यन्त तो वही मेरा घर था। अब विवाहके बाद जहाँ पतिदेव रहें; वहीं घर बनाना होगा। उन्होंने कई बार मुझे शान्त करनेकी चेष्टा की थी; पर उस समय मैं चुप न हो सकी। अब मुझे शान्त देखकर उन्होंने कुछ बातचीतका सिल-सिला आरम्भ किया। उनका उद्देश्य मेरा ध्यान घरकी ओरसे हटाकर किसी अन्य विषयमें लगा देनेका था। कुछ देरकी बातचीतसे उन्हें इसमें सफलता मिल गयी।"

"ससुराल पहुँचनेतक मैं बहुत कुछ सम्भल गयी थी तथा मुझे किस तरह रहना चाहिये, इस विषयमें भी भली-भाँति विचार कर चुकी थी। जब मैं अपने नये घरमें पहुँची तब सारे घरकी दृष्टि मेरी ओर ही लगी हुई थी। माताजी ( सासजी ) अन्य महिलाओंके साथ हमलोगोंकी अगवानीके लिये द्वारपर ही उपस्थित थीं। बड़े प्रेमसे उन्होंने हमलोगोंका "गृह-प्रवेश" कराया। मैंने उनके तथा

अन्य बड़ी-बूढ़ी स्त्रियोंके पैर छुए, सबने आदर सहित आशीर्वाद दिया।"

"दो-एक दिन विवाहकी बाकी रस्म-रिवाजोंमें लग गये। इसके बाद चार-पाँच दिन घरके लोगोंके स्वभावका अन्दाज लगानेमें लगे। सौभाग्यवश पतिदेवकी सहानुभूति तो रास्तेमें ही प्राप्त कर चुकी थी, बाकी लोग भी बहुत शीघ्र ही अनुकूल हो गये। आरम्भसे ही मैंने अन्य नव-बधुओंकी भाँति घरके भीतर आबद्ध न रहकर माताजीके हर काममें सहायता पहुँचानी आरम्भ कर दी। मेरे इस तरहके बर्तावसे वे पहले पहल बहुत सहमीं, क्योंकि उन्हें भय था कि लोग उन्हें इस तरह नव-वधूसे काम लेनेके लिये उलहना देंगे; पर मेरी जिद्के आगे,मुझे प्रसन्न रखने-की गरजसे, उन्होंने उन सबके आक्षेपोंका बड़ी बुद्धिमानी-से उत्तर देकर दोनों ओरकी बातको बनाये रखा।"

"यह सब तो हुआ,पर बहुत चेष्टा करनेपर भी घरके एक प्राणीको मैं सन्तुष्ट नहीं कर सकी। वह थीं मेरी छोटी ननद। उनका स्वभाव इतना विचित्र था कि वे क्या चाहती हैं, इसका जानना मेरी बुद्धिके बाहरकी बात थी। मैंने हर प्रकारसे उन्हें सन्तुष्ट रखनेकी चेष्टा की; परन्तु सब व्यर्थ। जबतक उनका विवाह नहीं हो गया और

जबतक वे अपनी ससुरालसे नहीं लौट आयीं,तबतक उन्हें ननदों द्वारा किस प्रकार भौजाईको कष्ट पहुँचता है इसका पता नहीं लगा। असल बात यह थी कि उनकी ननद इतने उग्र स्वभावकी थी कि उसके आगे इनकी उग्रता बहुत शीघ्र परास्त हो गयी तथा इन्हें पता चल गया कि ननदके इस तरहके बर्तावसे पराये घरसे आयी हुई नव-वधूको कितना कष्ट पहुँचता है। वहाँसे लौटनेके बादसे ही वे मेरी इतनी अनुगामिनी बन गयीं कि फिर कभी उन्होंने मेरे विरुद्ध कोई बात नहीं उठायी।"

"पिताजी परदेके विरोधी थे। माताजी परदा नहीं करती थीं। उनकी इच्छा मेरा विवाह भी बिना परदेके ही करनेका था। पर ससुरजीकी असम्मतिके कारण वे ऐसा नहीं कर सके। यहाँ आकर मैंने पतिदेवकी इच्छा भी मेरे ही अनुकूल पायी। मैंने धीरे-धीरे माताजीको परदेकी हानियाँ समझानी आरम्भ कीं, जिन समाजोंमें परदा नहीं है उनके उदाहरण दिये। उनके और अपने स्वास्थ्यका मिलान करके दिखाया। परदा न रखनेसे मनमें बल आता है, इस बातको सप्रमाण समझाया। इस तरहके निरन्तरके उद्योगसे अन्तमें उन्हें मैंने अपने अनुकूल बना लिया। पिताजी ( ससुरजी ) भी पत्रोंमें आये दिन परदा

करनेवाली स्त्रियोंकी दुर्दशाका हाल पढ़ते-पढ़ते तथा इस परदेके कारण ही असमय स्त्री और बच्चोंका जीवन समाप्त हो जानेकी घटनाओंको देखते-देखते वे भी इसे उठानेके पक्षपाती हो चले थे। अब तो माताजीकी सहायतासे आज हमारे घरसे यह बुराई बिलकुल ही दूर हो गयी है, यह बात आपसे छिपा नहीं है।

"अभी मेरे विवाहको सिर्फ चार साल हुए हैं। इस थोड़ेसे समयमें ही हमारे घरका कायापलट हो गया है। पतिदेव तो इस परिस्थितिसे सन्तुष्ट हैं ही पिताजी और माताजी भी बहुत ही प्रसन्न रहते हैं, ननदजी तो इतनी अनुकूल हो गयी हैं कि वे माताजीसे अधिक मुझे मानती हैं। घरमें शान्तिका साम्राज्य है। आज मैं यहाँ घरवालोंकी आज्ञा लेकर ही आयी हूँ। उन लोगोंकी भी यह धारणा है कि स्त्रियोंका सुधार स्त्रियोंके द्वारा ही हो सकता है। इसलिये इस तरहका महिला-मण्डल स्थापित करनेकी हमारे यहाँ बहुत दिनोंसे चर्चा चल रही थी। आज परमात्माकी कृपा और बहिन चम्पाके उद्योगसे हमलोगोंको यह शुभ दिन देखनेको मिला है।"

"आज समय बहुत हो गया है। आप लोगोंकी राय हो तो आगामी अधिवेशनमें बहिन चम्पा अपनी "बीती"

सुनानेकी कृपा करेंगी—उनसे यह अनुरोध कर सभाका कार्य समाप्त किया जाय।"

श्रीमती चम्पाने सहर्ष "अपनी बीती" सुनाना स्वीकार करते हुए, कहा कि "हमारी सभानेत्रीजीने जिस ढंगसे अपनी "बीती" सुनायी है, वह बहुत ही उत्तम है। जबतक हम अपनी कमजोरियोंको स्पष्ट रूपसे दूसरोंके सामने रखनेमें संकोच करती रहेंगी तबतक हमारे भीतरकी बुराइयाँ दूर नहीं हो सकतीं। पुरुष-समाजका हमारी ओर कम आकर्षण नहीं है। गृहस्थीका सारा भार हमारे ऊपर छोड़कर, अपनी कमाईका सर्वस्व हमारे हाथोंमें रखकर जिस उदार नीतिसे वे काम ले रहे हैं, वह कम त्यागकी बात नहीं है। यदि हम भी उनके विश्वासका पूरा बदला दे सकें तो आज हमारा यह बूढ़ा भारत फिर एक बार ऋषि-मुनियोंके सत्ययुगके समयके आनन्दका उपभोग करने लगे।" इसके बाद श्रीमती चम्पाने सबसे जलपान करनेका अनुरोध किया।

सबने आनन्दसे खाया-पीया और श्रीमती चम्पाको इसके लिये धन्यवाद देते हुए अपने-अपने घर रवाना हुईं।

---

## दूसरी बैठक

आज मण्डलकी दूसरी बैठक मण्डलकी सभानेत्री श्रीमती कमलादेवीके निवासस्थान पर है। हमारी पूर्व-परिचिता महिलाओंके अतिरिक्त और भी दो-तीन नये चेहरे दिखाई दे रहे हैं।

निश्चित समयपर सभानेत्री श्रीमती कमलादेवीके आसन ग्रहण कर लेनेपर मन्त्रिणी श्रीमती चम्पादेवीने मण्डलके गत अधिवेशनका कार्य-विवरण पढ़ सुनाया। तदनन्तर नयी आयी हुई बहिनोंका उपस्थित सदस्याओंसे परिचय कराते हुए उन्हें भी मण्डलकी सदस्या बनानेका प्रस्ताव उपस्थित किया गया जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत

हुआ, तदन्तर सभानेत्रीजीने .श्रीमती चम्पादेवीसे अपनी "बीती" कहनेका अनुरोध किया—

श्रीमती चम्पाने अपनी "बीती" इस प्रकारसे कहनी शुरू की—

मेरे माता-पिता बहुत ही गरीब थे और हमारा परिवार भी बहुत छोटा था। हम सिर्फ तीन ही प्राणी उस परिवारमें थे। पिताजी एक धनाढ्य मिल-मालिकके यहाँ नौकरी करते थे। वे बहुत पढ़े-लिखे नहीं थे। इसलिये उन्हें बिके हुए मालके रुपये वसूल करनेका काम करना पड़ता था। वेतन सिर्फ २५) मासिक मिलता था। परन्तु इतनेमें ही वे सन्तोषपूर्वक अपनी छोटीसी गृहस्थी चला लेते थे। ठीक समय कामपर चले जाते और अपना काम पूरा करके बहुत रात गये घर लौटते थे। उन्हें परिश्रम भी काफी करना पड़ता था; परन्तु एक कम पढ़े-लिखे आदमीको बिना कठिन मेहनत किये कौन २५) रुपये देता है? इसलिये उन्हें अधिक परिश्रम करनेका दुःख भी नहीं होता था। पिताजीका स्वभाव कुछ चिड़चिड़ा था। परन्तु इसका अधिक अनुभव माताजीको होता था। वे बेचारी बहुत सीधे स्वभावकी थीं। इसलिये पिताजी जो कुछ कहते, वे उसे बिना किसी तरहकी आपत्ति किये पूरा कर

देती थीं। पिताजी यों तो बहुत नहीं बिगड़ते थे, पर जिस दिन मालिकसे अपने मनके विपरीत कुछ सुन आते, उस दिन उसका बदला वे माताजीसे ही निकालते थे। माताजी भी इस बातको समझ गयी थीं; इसलिये उनके नाराज़ होनेपर वे धैर्यके साथ सब कुछ चुपचाप सुन लेती थीं।

इसी तरह बिना किसी लक्ष्यके हमारे दिन बीत रहे थे। जब मैं ग्यारह वर्षकी हो गयी, तब माताजीने मेरा सम्बन्ध ठीक करनेके लिये पिताजीसे बीच-बीचमें आग्रह करना आरम्भ किया; पिताजी भी निश्चिन्त नहीं थे। दो-चार जगह सगाईकी बात हुई, परन्तु कहीं घर अच्छा नहीं था, तो कहीं वर ठीक नहीं था। इसी तरह देख-भाल और खोज-ढूंढ़में एक साल और बीत गया। अब मैं बारह वर्ष पूरा करके तेरहवेंमें पांव रख चुकी थी। पहलेसे ही मेरा रङ्ग गोरा था, पर अब तो वह और भी निखरकर ठीक मेरे नामके अनुरूप चम्पाके फूलकी ही तरह खिल उठा था।

एक दिन नियमके विरुद्ध पिताजी दो पहरको ही घर लौट आये। उनका चेहरा उतरा हुआ था। सदाकी मुखाकृतिसे आज बिलकुल ही मेल नहीं था; जल्दी लौट आनेका कारण पूछनेपर वे कहने लगे,—"मालिकने जवाब दे दिया है। वे चाहते हैं, कि मेरी चम्पा उनके एक मित्रको,

जो पचासीमें पहुंच चुके हैं, ब्याह दी जाये। ऐसा करनेसे चम्पा तो करोड़पतीके घर चली ही जायेगी, हम लोगोंको भी काफी धन मिलेगा; पर मैं अपनी चम्पाको कुएमें नहीं ढकेलना चाहता। बस इसी अपराधके लिये मुझे कामसे छुड़ा दिया गया है।"

"मैं लगभग बीस सालसे उनकी सेवा कर रहा हूं, पर मिलते हैं वही पचीस रुपये। कई बार दूसरी जगहोंसे तीस और पैंतीसमें बुलाहट आयी, पर मैंने उस तरफ कुछ भी ध्यान नहीं दिया। यही समझता रहा, कि नित्यका खर्च तो चल ही जाता है, जब चम्पाका ब्याह करनेका अवसर आवेगा तब मालिक आपही विचार लेंगे; पर हुआ इसके विपरीत। विवाह करनेकी तो कौन कहे, मेरी इस गुलाब-की-सी कलीको एक बुड्ढेकी अर्थीमें बांधनेके लिये जोर दिया जा रहा है। मुझसे यह कभी नहीं हो सकता। मैंने साफ इनकार कर दिया। फिर क्या था? उसी समय मेरा हिसाब कर दिया गया तथा एक मासका आगामी वेतन देकर मुझे जवाब दे दिया गया।"

पिताजीने इधर-उधर बहुत चेष्टा की, पर कहीं काम ठीक नही हुआ। होता भी कैसे? जो भी उन्हें रखना चाहता, पहले उनके पुराने मालिकसे पूछता। वे कुछ ऐसी

संदिग्ध बात कह देते, जिससे कोई रखना भी चाहता तो न रखता।

"इसी तरह दिन बीतने लगे। जो नगद रुपये थे, सब खर्च हो गये। माताजीके जेवर बेचकर कुछ दिन काम चला; पर ऐसे कितने दिन चलता? अन्तमें यह अवस्था आ उपस्थित हुई कि किसी रोज दिनको खानेको मिलता तो रातको निराहार ही रह जाना पड़ता।"

ऐसे ही समयमें पिताजीके पास दो भलेमानस आने-जाने लगे। वे घंटों इधर-उधरकी बातें करते। कभी किसी बड़े आदमीके धन वैभवकी चर्चा करते, तो कभी किसीके महल-बगीचोंकी प्रशंसा करते। इसी तरह बातों ही बातों में मेरे रूप-रंगकी भी आलोचना कर जाते। घर तो एक ही था, इसलिये उनके सामने ही माँ और मैं एक ओर बैठी ये सब बातें सुनती रहती थीं।"

"एक दिन उनमेंसे एकने पिताजीके सामने मेरे विवाह-की चर्चा चलायी। वह कहने लगा, "अमुक सेठकी पत्नीका देहान्त हो गया है, घरमें करोड़ोंकी सम्पत्ति है, अवस्था भी बहुत अधिक नहीं है, यही पैंतिस चालीसके लगभग होगी; यदि आपकी सम्मति हो तो चम्पाके लिये उनसे बात की जाय? ऐसी लक्ष्मी-सी कन्याको वैसे घरकी

शोभा बढ़ानेके लिये ही भगवान उत्पन्न किया करते हैं।" मैं बैठी-बैठी सब बातें सुन रही थी। जो पिताजी ऐसी ही बात सुनकर अपने मालिकसे नाराज होकर अपने जीवन निर्वाहके एकमात्र साधनपर लात मारकर चले आये थे, वे ही आज बहुत मनोयोगपूर्वक इनकी बातें सुन रहे थे। उन्होंने कहा, "आप बात कीजिये, लड़का देखकर इस विषयमें विचार किया जायगा।"

"अभाव एक ऐसी वस्तु है; जो मनुष्यको कुछसे कुछ बना देता है। आज घरमें खानेके लिये अन्नका न होना ही पिताजीको ऐसे अवांछित प्रस्तावके लिये अपनी सम्मति देनेको वाध्य कर रहा था।"

"अधिक क्या कहूं! सब ठीक हो गया! जो काम छः महिने पहले ही हो जाता, वह छः महीने बाद हुआ। वही पिताजीके पुराने मालिकके मित्र, जो पचास सालसे भी अधिक उम्रके थे मेरे भाग्य विधाता निश्चित हुए। मैं क्या करती? हिन्दू समाजने गाय और लड़कीके लिये यह नियम-सा बना रखा है कि वह जिसके हवाले कर दी जाय, बिना सींग-पूँछ हिलाये उसके पीछे चली जाय, यही उसका कर्तव्य है। इसी नियमके अनुसार मैं बालिका होकर भी बूढ़ेसे व्याही जानेके कारण अपनी ससुरालमें

आते ही बेटे-पोतोंकी माँ-दादी बन बैठी। धन और मानकी वहाँ कमी न थी; पर मुझे यह सब सपनेके-से खेल मालूम हो रहे थे।"

"अब कुछ ऐसी बातें कहनी हैं जो मुझे न कहनी चाहिये। पर जब मैंने अपनी "बीती" सुनाना स्वीकार कर ही लिया है, तब सब कुछ कहना ही होगा। मैं गरीब पिताकी पुत्री थी। वहाँ खाने-पहननेका बराबर ही अभाव रहा करता था, पर अब यहाँ आकर नाना प्रकारके भोजन, वस्त्र, गहने और सजावटकी वस्तुएँ अनायास प्राप्त होने लगीं।"

"यद्यपि पतिदेव वृद्ध थे, सर और मूछोंके सारे बाल सफेद हो गये थे, मुँहमें असली एक भी दाँत बाकी नहीं बचा था, तो भी बनावटी आवरणोंके सहारे वे मेरे सन्मुख नवयुवक होनेकी ही निष्फल चेष्टा किया करते थे। हर बातमें मेरा रुख देखकर वे मेरे मनके कामोंको पूरा करनेकी चेष्टा करते रहते थे। मैं भी विलासिताकी उन सामग्रियोंपर ऐसी मोहित हो चली थी कि अपने आपको एकबारगी ही भूल गयी थी।"

"उधर मेरा विवाह होनेके कुछ दिनों बाद उन्होंने अच्छीसी रकम लगाकर पिताजीको चीनीका एक कार-

खाना खुलवा दिया था, जिससे सिर्फ उनका अभाव ही दूर नहीं हुआ, प्रत्युत वे पचासों आदमियोंको नौकर रखकर खूब ठाट-बाटसे रहने लगे।"

"लगभग एक सालतक मेरे दिन आनन्दसे व्यतीत हुए। इसके बाद पतिदेव अस्वस्थ रहने लगे! इसका प्रधान कारण उनका असंयम था। वैद्य डाक्टरोंसे घर भरा रहने लगा। रोज नयी-नयी दवाएं आने लगीं, पर सब बेकार! उनका शरीर शिथिल हो चला था वे एक सालमें ही पचाससे साठ वर्षके-से लगने लगे थे। अब मेरे साथ वे पहलेकी-सी रंग-रलियोंकी बातें नहीं करते, अब तो गीता और योग-वाशिष्ठकी चर्चा चलने लगी, आत्म-संयमका पाठ पढ़ाया जाने लगा। पहले-पहल तो मुझे ये सब बातें बहुत खलीं; कहाँ आठों पहरकी वे उन्मादक बातें, और कहाँ संन्यास और त्यागकी कथाएं? पर दिन-दिन गिरते हुए उनके स्वाथ्यकी ओर देखकर मेरी आँखें खुलने लगीं संयमके साथ रहना आरंभ न करूँगी तो शीघ्र ही मुझे इनके जीवनसे हाथ धोना पड़ेगा। सम्भव है, साव-धान होकर मैं इनके स्वास्थ्यको सुधारकर अपना सधवा-पन बनाये रख सकूँ। कहना नहीं होगा कि ये भाव गीता और योग-वाशिष्ठकी कथाएँ सुनकर ही उत्पन्न हुए थे।"

"मैंने अपना मार्ग स्थिर कर लिया, उनके साथ हँसी-मजाक तथा आमोद-प्रमोद पूर्ववत् ही जारी रखा। उनको अपनी वृद्धावस्था खलने न पावे, इसका मैं बराबर ध्यान रखती थी। शरीरमें उत्तेजना उत्पन्न करनेवाली दवाओंकी अपेक्षा पुष्टिकर आहार-विहारका यथोचित प्रबन्ध करके, मैं उनकी पूरी सार संभाल करने लगी। इन कामोंका फल भी बहुत अच्छा हुआ। कुछ ही दिनोंमें वे रोगमुक्त हो गये।"

"एक दिन बातों ही बातोंमें वे कहने लगे, "चम्पा! तुमने ही मुझे बचा लिया। यदि तुम इस तरह मेरी देख-भाल न करती तो मैं अवश्य मर गया होता। यद्यपि तुम्हारे साथ विवाह करके मैंने तुम्हें अन्धे कुएमें ढकेल दिया, पर तुम योग्य माता-पिताकी पुत्री निकली। तुमने मेरे धन वैभवको तुच्छ सिद्ध करके भारतकी सच्ची सती-साध्वीका-सा काम किया; नहीं तो तुम्हें क्या पड़ी थी जो अपना सुख-शृङ्गार छोड़कर इस तरह संन्यासिनीका-सा जीवन बिताती? पहली स्त्रीके वियोगके बाद तुम्हारी जैसी सुन्दरी युवतीको पत्नी-रूपमें पाकर मैं पगल-सा हो गया था; परन्तु अपने सुखकी आशासे नहीं, केवल तुम्हें सुखी और सन्तुष्ट करनेके लिये ही मुझमें यह

विचित्र परिवर्त्तन हो गया था। मैं नहीं समझता था कि सिर्फ एक सालमें मुझे इसके लिये इतना पश्चात्ताप करना पड़ेगा। इसका परिणाम यह भी तो हो सकता था कि तुम मुझे मरनेके लिये छोड़ देती। तुम्हें सुख-शृङ्गार और विलास साधनोंकी तो कोई कमी थी ही नहीं। पर नहीं, भारतकी स्त्रियोंका यह आदर्श नहीं है। ऐसा तो विदेशी सभ्यताके रंगमें रंगी हुई स्त्रियाँ ही,अपने भविष्यके हानि-लाभका विचार न करके, कर सकती हैं।"

मैंने कहा—"पतिदेव! हम लोगोंको तो जन्मसे ही यह शिक्षा दी जाती है, कि जिसे माता-पिता सौंप दें, परमेश्वर मानकर हम उसकी पूजा करें। वह बुड्ढा है, रोगी है, निकम्मा है या निर्धन है—इसका विचार करना हमारा काम नहीं है। यदि आप सुखी हैं तो हम अवश्य ही सुखी रहेंगी, यदि आपको ही सुख नहीं मिला, तो फिर हमारा सारा सुख-सम्भोग किस कामका?"

"संसारमें भोग-विलास ही बड़ा नहीं है। यदि भोग-विलास ही बड़ा होता, तो हमारे राजा-महाराजा और सेठ-साहूकार उन त्यागी तपस्वी महर्षियोंकी कुटियोंमें क्यों जाते,जो सारे संसारके वैभवोंको लात मारके निर्जन जंगलोंमें एकान्त निवास करते थे, और न हमारी सती

स्त्रियाँ ही अपने पतियोंके वियोगके बाद सशरीर अग्निमें प्रवेश करतीं अथवा जीवित रहकर पति-वियोग रूपी सन्ताप-अग्निमें अपनेको तिल-तिल जलातीं।"

"आज आप सब देख रही हैं, मेरे विवाहके दस साल हो जानेपर भी पतिदेवका स्वास्थ्य कितना सुन्दर है तथा हमारे घरकी व्यवस्था कैसी आदर्श प्रतीत होती है। यह सब संयम और सन्तोषका ही फल है।"

"प्रिय बहिनो, यद्यपि मेरी अपनी "बीती" में कुछ ऐसी बातें भी मुझे कहनी पड़ी हैं जो एक पत्नीको अपने पूज्य पतिके लिये न कहनी चाहिये थीं, पर मैंने सिर्फ मेरी जैसी परिस्थितिमें पड़ी हुई बहिनोंको अपनी तरह सुखी देखनेके अभिप्रायसे ही कहीं हैं। मुझे पक्का विश्वास है कि मेरे पतिदेव मेरे इस भाषणसे कदापि असन्तुष्ट न होंगे।"

श्रीमती चम्पादेवीकी आप "बीती" सुनकर उपस्थित सारी सदस्याओंको एक अपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ जो इस तरहकी सभाके बिना कदापि नहीं हो सकता था।

तदनन्तर सभानेत्रीजीने उपस्थित महिलाओंसे जलपान करनेका अनुरोध करके आजकी कार्यवाही समाप्त की।

## तीसरी बैठक

आज मण्डलकी तीसरी बैठक सभानेत्रीजीके तत्वाकधानमें आरम्भ हुई। अब मण्डलकी सदस्याओंकी संख्या काफी हो गयी है, उपस्थिति भी सन्तोष-जनक है।

निश्चित समयपर सभाका कार्य आरम्भ हुआ। सभानेत्रीजीकी आज्ञासे मंत्रिणीजीने गत अधिवेशनका कार्य-विवरण पढ़कर सुनाया। नयी सदस्याओंके आवेदन-पत्र भी सुनाये। सभी प्रान्तोंसे आये हुए सहानुभूति-सूचक पत्र और सन्देश भी पढ़कर सुनाये गये।

इसके बाद सभानेत्रीजीने श्रीमती दयादेवीजीसे अपनी आप "बीती" सुनानेका अनुरोध किया।

सभानेत्रीजीका आदेश मानकर श्रीमती दयादेवीजीने अपनी "बीती" कहनी प्रारम्भ की।

"मेरा बचपन एक गांवमें बीता है। हम पांच बहिनें थीं, भाई एक भी नहीं, मैं सबसे बड़ी थी, उस समय मेरी आयु ग्यारह सालकी थी, पिताजीकी एक छोटी-सी दूकान थी; उसकी बहुत थोड़ी-सी आयसे बड़ी कठिनाईसे हम-लोगोंका काम चलता था। काम क्या चलता था, रूखी-सूखी रोटियाँ खाकर दिन व्यतीत किये जाते थे। मैं पढ़ने-लिखनेका तो नाम भी नहीं जानती थी, न माताजी पढ़ी-लिखी थीं, न पिताजीका ही अक्षरोंसे परिचय था; फिर हम गरीबोंको साक्षर बनानेके लिये किसे क्या आवश्य-कता थी!"

"घरके धन्धेमें—पीसने, कूटनेमें—अब मैं माताजीकी काफी सहायता करने लगी थी, रसोई भी आधी-परधी बना ही लेती थी, बाकी समय योंही गप-शप या खेलने-कूदनेमें बिता देती। हाँ, छोटी बहिनोंकी देख-रेख भी कभी थोड़ी बहुत कर लिया करती थी।"

"इसी तरह करते-धरते मैं बारह सालकी हो गयी, अब तो मेरा विवाह होना ही चाहिये; रात-दिन माताजीको अब सिर्फ यही चिन्ता सताने लगी। बीच-बीचमें पिताजी-

से उनकी इस विषयको लेकर कुछ कहा-सुनी भी हो जाया करती थी। यह बात नहीं थी कि पिताजी इस बातसे लापरवाह थे, पर सम्बन्ध तो दूसरी तरफवालोंके स्वीकार करनेपर ही होता है। उनके लाख चेष्टा करनेपर भी उन्हें सफलता नहीं मिल रही थी।"

"इसी तरह एक साल और निकल गया, मैं पूरे तेरह सालकी हो गयी, अब तो घरसे बाहर निकलना भी कठिन हो गया, जो भी मुझे देखता, माता-पिताको दो-चार खरी-खोटी सुनाये बिना नहीं रहता। यद्यपि आज-कल लड़कियोंको बड़ी करके विवाहनेकी रीति चल पड़ी है, पर यह शहरोंतक ही सीमित है। आज भी गांवोंमें बारह बरसकी होते-होते लड़कीको विवाह देना ही अच्छा समझते हैं।"

"रंग-रूपमें मैं बुरी नहीं थी, घरका काम-धन्धा भी बड़ी सावधानीसे करती थी, अपने सुभीतेके लिये मैंने कभी पिताजीको या माताजीको एक शब्द भी नहीं कहा था, तो भी न जाने क्यों दोनों ही मुझे भार-स्वरूप समझते थे, मेरे प्रति उनका वात्सल्य भाव नहीं था; मेरी समझमें कन्याके रूपमें उनके घर जन्म लेना ही मेरा एकमात्र अप-राध था। अथवा मेरा विवाह करनेके लिये उनके पास धनका अभाव भी इसका कारण हो सकता है।"

"येन केन प्रकारेण" एक सम्बन्ध ठीक हुआ। लड़का मुझसे दो साल छोटा था, घर भी साधारण था, तो भी पिताजीको अपनी उस छोटीसी पूंजीका एक बहुत बड़ा हिस्सा मेरे विवाहमें खर्च करना पड़ा।"

"ससुराल जाकर मुझे बड़ी लज्जा उठानी पड़ी, क्योंकि पतिदेव मुझसे बहुत ही छोटे लगते थे। उमरमें तो कुल दो साल ही छोटे थे, पर कद्के नाटे थे,मैं कुछ ऊंची थी। इसलिये देखनेमें बहुत फर्क मालूम देता था, यद्यपि मैं एक बुढ़ियाकी तरह झुककर चलती थी जिससे मेरी लंबाई कुछ कम मालूम दे,पर मेरी यह चतुरई किसी कामकी सिद्ध नहीं हो रही थी, उल्टे मेरी इस हरकतसे देखने वालोंका ध्यान और भी अधिक मेरी ओर आकर्षित हो जाता था।"

"लोग चाहे जो समझें, मैं तो पराधीन थी,माता-पिताने जो उचित समझा सो किया। वे बेचारे भी क्या करते? यह तो हिन्दू समाजका दोष है जो लोगोंको इस तरहके काम करनेको वाध्य करता है। यह हँसाई दो-चार दिनकी नहीं थी, बल्कि बरसों इसी तरह चलती रही।"

"यह तो हुई बाहरकी बात, अब रङ्ग-महलकी बात कहनी है। कहते लज्जा आती है, पर मैं सत्य कहनेकी प्रतिज्ञा कर चुकी हूं, इसलिये सभी बातें कहनी ही होंगी।

मैं तो बहुत पहले ही अपने शयनागारमें पहुंचा दी गयी थी, सोनेके समय पतिदेवको भी घरकी बड़ी-बूढ़ियोंने उसी घरमें जबर्दस्ती ढकेलकर बाहरसे दरवाजा बन्द कर दिया। बेचारे क्या करते ? ऊंघते हुए पलंगपर जाकर लेट गये। मैं कमरेके एक कोनेमें सिमटी हुई इसी आशामें बैठी थी कि पतिदेव आवेंगे और मुझे आदर सहित अपने पास थोड़ी-सी जगह सोनेके लिये प्रदान करेंगे, पर मेरी आशा पूर्ण न हुई। वे जहां जाकर लेटे थे वहीं गहरी नींदमें सो गये, मानो उनकी समझमें घरमें कोई दूसरा आदमी है ही नहीं। मैं थोड़ी देर राह देखकर मन मसोस-के वहीं पड़ रही; नींद-वींद तो क्या आती, सारी रात योंही आशा और निराशामें ही बीत गयी, सवेरा हुआ, बाहरसे दरवाजेकी सांकल खुलनेकी आवाज आयी, पतिदेव तो झटसे एक सांसमें ही घरके बाहर हो गये, मैं अकेली उसी कोनेमें मन मारे बैठी रही, नींदके मारे आंखें फूल गयीं थीं। इसी समय घरकी अन्य स्त्रियोंका एक झुण्ड वहां आ धमका, मेरा चेहरा देखकर लगीं सब चुटकियां लेने। कोई कहने लगी, नयी बहू है न, सारी रात मान-मनावनमें ही बीती है। कोई कह रही थी, सोहागकी पहली रात थी न, इसलिये पेटकी सारी बातें कहनी-सुननी थीं; भला

सो जाती तो काम कैसे चलता? इसी तरह कोई कुछ और कोई कुछ चुभती चुटकियां ले रहीं थी।

मैं उन सबका क्या उत्तर देती? रातकी बात सोच-सोचकर मेरे मनमें जो तूफान मचा हुआ था वह मैं ही जानती थी, दूसरोंको उसका क्या पता? यदि उन भली बहिनोंमेंसे किसीको इसका अनुभव हो भी चुका था तो इस समय तो वे सभी एक ही स्वरमें बोल रही थीं। इस तरह थोड़ी देर जला-भुनाकर वे सब चली गयीं। मैंने भी छोटी ननदको साथ लेकर नित्य-क्रियासे छुट्टी पायी। दिनभर तो योंही इधर-उधरकी बातोंमें बीत गया। रात हुई, और फिर उसी नाटकका पटोत्तोलन हुआ। पतिदेव आये और उसी तरह पलंगपर सुखसे सो गये। मैंने थोड़ी देर तो राह देखी पर जब उधरसे किसी तरहकी आशा न रही,तब धीरेसे उठी और पलंगके पास जा बैठी। बहुत देर बैठी रहनेपर भी स्थितिमें कुछ परिवर्तन नहीं हुआ, हारकर उन्हें जगानेका प्रयत्न किया, दो-चार बार छेड़छाड़ करनेपर जागे तो, पर करवट बदल कर फिर सो रहे। बड़ी कठिनाईमें पड़ी; करूं तो क्या करूं? फिर साहस करके जगाया, इस बार झिड़कके बोले—यदि अधिक दिक करोगी तो मांको बुला लूंगा। उनकी इस बातसे मैं

भी सहम गयी। कहीं सचमुच ही यह मांको आवाज न दे बैठें, फिर तो बड़ी फजीहत होगी, यह सोचके वहीं पलंगके पास पड़ रही। बहुत रात गयेतक नींद नहीं आयी, आखिरी रातमें एक झपकी आयी, कुछ आहट पाकर जब आंखें खुलीं तो देखती हूं कि दिन निकल आया है, और पतिदेव न मालूम कब उठकर चले गये हैं।

सारा कमरा घरकी स्त्रियोंसे भरा था। कलकी तरह आज भी नाना प्रकारकी आवाजें कसी जा रही थीं। मैं क्या उत्तर देती? सर नीचा किये सब सुनती रही। उन सबके लिये तो मजाक हो रहा था, पर मैं भीतर ही भीतर कुढ़ी जा रही थी। मेरे मनकी अवस्था या तो मैं जानती थी या अन्तर्यामी भगवान्।

इसी तरह थोड़ी देर वे सब हँस-बोलकर चली गयीं। योंही "सिंहके सामने बकरेको बांधकर अच्छे अच्छे पदार्थ खिलानेकी तरह" मेरा नाना प्रकारसे लाड़-प्यार किया जा रहा था, पर पतिदेवका आदर न पानेसे मुझे यह सब फीका लगता था। उन बेचारोंका भी इसमें क्या दोष था? एक बारह सालका बालक मेरे जैसी यौवन प्राप्त युवतीको कैसे सन्तुष्ठ कर सकता था? यह दोष तो हिन्दू-समाजका था जो इस तरहके बेजोड़ विवाह कराके

दो प्राणियोंके जीवनको इस तरह संकटापन्न बनानेमें जरा भी संकोच नहीं करता।

इसी तरहके उतार-चढ़ाव सहकर एक मासके बाद मैं पिताके घर अपने उसी छोटेसे ग्राममें लौटी। माँ और अड़ोस-पड़ोसकी स्त्रियोंने मुझे आदर सहित घरमें प्रवेश कराया, मैं नहीं जानती थी कि ससुरालसे लौटकर पिता-के घर आनेपर अब वह पहलेकी तरह मेरा घर नहीं रह जायगा, पर असलमें यहां आकर यही बात मालूम हुई। पहले मैं योंही चाहे जहां चली जाती, न कोई कुछ कहता, न सुनता, न कहीं आदर था न निरादर; पर अब वह बात नहीं रही। मेरा मन पहलेकी तरह इधर-उधर जानेका करता, पर माँ ऐसा करनेको मना करती। यदि किसी विशेष कामसे मैं बाहर जाती भी तो मुंहसे बहन कहने-वाले कई भाई भी मेरी ओर इस घृणास्पद दृष्टिसे देखते कि उनकी वह नजर मुझे बहुत ही अखरती। नवयुवक ही नहीं, बेटी कहनेवाले चाचा और बाबा भी मेरी ओर ललचायी हुई दृष्टिसे ही देखते मालूम होते। इनके ये भाव देखकर मैं सोचती, इसी एक ही महीनेमें, हां! सिर्फ तीस ही दिनमें ऐसा क्या परिवर्तन हो गया जो सारे संसारकी दृष्टिमें मैं एक दूसरी ही वस्तु जँचने लगी।

समय किसीकी राह नहीं देखता, वह तो समान गति-से आगे बढ़ता ही चला जाता है। उसे इन बातोंकी कुछ भी परवाह नहीं रहती कि कोई उसको कुछ विलम्बसे बीतता देखना चाहता है तो कोई चुटकी बजाते दिन और महीने ही नहीं सालके साल बीत जाना पसन्द करता है। मेरे भी दो महीने इसी तरह इच्छा या अनिच्छा-पूर्वक बीत गये। इस थोड़ेसे समयमें मैंने बहुतसी ऐसी बातों-का अनुभव किया जिनकी मुझे स्वप्नमें भी आशा नहीं थी। मैं नहीं जानती थी कि संसार इतना नीचे गिरा हुआ है कि लोग अपनी ही गोदकी खिलाई हुई बच्चीसे भी किसी दूसरी तरहकी आशा कर सकते हैं। इन सब बातोंको देखकर अब मैं घरसे बाहर निकलना पसन्द नहीं करती। पहले मांका बाहर जानेके लिये रोकना मुझे अखरता था, पर अनुभवने मुझे आज अपनेको ही बाहर जानेसे रोक दिया और यह समझा दिया कि बच्ची तुम संसारसे अनभिज्ञ हो, तुम्हारी माँने यह सब बातें अपने अनुभवसे सीखी हैं, इसलिये बड़ोंकी बातोंका आदर करना सीखो और उनका तब तक विरोध न करो, जब-तक तुम्हें अपने अनुभवसे उसमें बुराई न मालूम हो जाये।

ससुरालसे लोग बिदा करानेको आये। पिताजी गरीब थे, अपनी गरीबीको लांघकर जो कुछ उनसे बन पड़ा दे-लेके मुझे बिदा कर दिया। मैंने अपने उसी एक बारके परिचित घरमें फिर प्रवेश किया। पहली बार मैं एकबारगी ही संसारके व्यवहारसे अनभिज्ञ थी पर इस बार लोगोंके द्वारा, अनिच्छा पूर्वक ही सही, कुछ सीखकर आयी थी।

मेरे पतिदेव अपने पिताके एकलौते पुत्र थे। यद्यपि घरमें विशेष सम्पत्ति नहीं थी, पर दाल-रोटीकी कमी नहीं थी। ससुरजी इतना कमा लेते थे जिससे हमलोगोंका निर्वाह मजेमें हो जाता था। विवाहके समय जब मैं पहले पहल यहाँ आयी थी तब तो घरमें बहुतसी अन्य स्त्रियाँ भी थीं, पर इस बार उनमेंसे एक भी नहीं थी; वे सब विवाहमें सम्मिलित होनेके लिये ही आयी हुई थीं, जो कुछ दिन रहकर अपने-अपने घर चली गयी थीं।

पहली बारकी तरह अब पतिदेवके दर्शन दुर्लभ नहीं थे। अब तो पहले दिन ही वे दो-एक बार दिनमें भी अपने कमरेमें आये गये, फिर चाहे कामसे आये हों या योंही, रातको भी किसीके बाहरसे दरवाजा बन्द करनेकी आवश्यकता नहीं पड़ी, वे पहलेसे ही आकर सो गये थे और मैं अपनी सासकी सेवा करके कुछ बादमें आयी।

थोड़ी देर पलङ्गके पास बैठी रही, पर उधरसे कुछ भी चंचलता दिखाई नहीं पड़ी, तब मैंने ही साहस करके उन्हें जगाया, उन्होंने आँखें खोल दीं; बड़ी-बड़ी दो आँखों-से टुकुर-टुकुर मेरी ओर देखने लगे, पर मुंहसे एक शब्द भी नहीं बोले। मैंने देखा उन आँखोंमें कुछ प्यार है। मैं मन-ही-मन आनन्दके मारे उछल पड़ी, पर साथ ही यह भी देखा कि उन मतवाली आँखोंमें कुछ भयके भी चिह्न हैं।

साहस करके मैंने पूछा—"आप प्रसन्न हैं?" उत्तर मिला "खूब मजेमें हूं।" मैंने पूछा, "गत बार मैं यहां पूरे एक मास रही, पर मेरे अनेक प्रकारसे चेष्टा करनेपर भी आप बोले क्यों नहीं?" उन्होंने कहा "मुझे तुमसे डर लगता था।"

मैंने पूछा, "क्या अब भी डर लगता है? उत्तर मिला, "उतना तो नहीं, पर थोड़ा अब भी लगता है।" मैंने कहा "मै तो आपकी विवाहिता स्त्री हूं, आप मुझसे क्यों डरते हैं?"

उन्होंने कहा—"तुम मुझसे बहुत बड़ी हो, इसीसे डर लगता है।" मैंने कहा—"बहुत बड़ी तो नहीं हूं साल दो सालका फरक कोई फरक थोड़े ही कहलाता है।"

मैं सच कहती हूं इस बातचीतमें मुझे जो आनन्द आ रहा था, वह मेरे लिये शब्दोंमें प्रकट करना कठिन ही नहीं असम्भव है।

मैंने स्थितिको समझ लिया और मन-ही-मन अपना कर्त्तव्याकर्त्तव्य भी स्थिर कर लिया।

"प्यारी बहिनो, यद्यपि अब मेरे पतिदेव मेरे साथ बहुत अधिक प्रेम करने लगे थे, पर हम स्त्रियों-को प्रेमके साथ-साथ जिस एक और वस्तुकी आवश्य-कता रहती है उसके विषयमें वे एकबारगी ही अनजान थे। तो भी मैंने बहुत ही संयमसे काम लिया। उन्हें यह बिलकुल मालूम नहीं होने दिया कि मेरे मनमें उनसे और कुछ पानेकी लालसा भी छिपी हुई है।"

"वे नियमित रूपसे सोनेके समय मेरे या अपने, जो कहें कमरेमें आते, हँसते बोलते नाना प्रकारसे विनोद करते और सो रहते। जबतक बिनोद होता रहता मेरा मन भी बहुत संतुष्ट रहता; पर उनके सो जानेके बाद मुझे किस कठिनाईसे अपने मनको वशमें करना पड़ता, इसका हाल क्या तो मेरी जैसी परिस्थितिमें पड़ी हुई कोई मेरी बहिन जान सकती है या मेरे और आप सबके अन्तर्यामी भगवान।"

"इस तरहकी कठिनाईयोंका मुझे एक या दो दिन ही सामना नहीं करना पड़ा, मेरे निश्चयके अनुसार पूरे दो साल मुझे बिताने पड़े; क्योंकि पतिदेव अभी तेरह ही सालके थे, जबतक कमसे कम उनकी आयु पन्द्रह सालकी न हो जाय, मैं उनसे अलग रहनेमें ही उनका और मेरा दोनोंका कल्याण समझती थी।"

"प्यारी बहिनो! आप सोच सकती हैं, मुझे कितनी कठिन परीक्षा देनी पड़ रही थी। मै सधवा थी, अच्छा खाती थी, अच्छा पहनती थी, पतिदेव पास थे; लोग समझते थे, मैं बड़ी सुखी हूं। यहांतक कि माता-पिता और सास-ससुरकी भो यही धारणा थी। पर कैसी सुखी थी, यह मेरा ही मन जानता था। मेरी समझमें मुझसे एक विधवा कहीं सुखी कही जा सकती थी, क्योंकि उसने सदाके लिये आशा त्याग दी हैं। वह संयमसे रहती है, खाना पहिनना भी उसका बड़े हिसा-बसे होता है।"

"पतिके विषयमें भी उसकी आशा परलोककी तरफ ही लगी हुई है। वह खाती है जीनेके लिये, पहनती है लज्जा निवारणके लिये। इससे उस समयकी मेरी स्थिति एक विधवासे भी गयी बीती ही समझनी चाहिये।"

"अब मैं एक ऐसी बात कहना चाहती हूं जिसका जिक्र करनेके पहले आज भी मेरे रोंगटे खड़े हो गये हैं। बात लज्जाकी है, पर जब सच्ची बात कहनेका प्रण कर चुकी हूं तो कहना ही पड़ेगा।"

"एक बारकी बात है, पतिदेव अपनी माताजीके साथ अपने ननिहाल एक विवाहमें शामिल होनेके लिये गये हुए थे। घरमें ससुरजी और मैं दो ही जने रह गये। दो दिन शान्तिसे बीत गये। मैं रोटी बना देती, वे खाकर अपने कामपर चले जाते। संध्या समय फिर खाकर अपने घरमें सो रहते। मैं अपने घरमें सो रहती। दोनों घर पास ही पास थे, बीचमें एक पतलीसी दीवार थी और उसमें एक छोटासा दरवाजा था, जो बराबर बंद रहा करता था। मुझे एक सालसे भी अधिक वहाँ रहते हो गया था, पर आजतक कभी इसको खुला हुआ नहीं देखा। अतः मैं इसे भूली हुई सी थी, कभी यह ध्यानमें भी नहीं आया था, कि इस बीचके दरवाजेसे एक घरसे दूसरे घरमें जाना-आना हो सकता है। रातके बारहके करीब बजे होंगे। मैं नींदमें सो रही थी। अचानक कुछ खटका सुनके आँखें खुल गयीं। ध्यान देनेसे मालूम हुआ बगलके घरमें कोई चीज हटानेसे यह आवाज हुई है। कुछ देर बाद फिर वैसा ही

खटका हुआ। साथ ही बीचके उस दरवाजेकी साँकल खुलनेकी आवाज भी सुनाई दी। मैं डरके मारे उठ बैठी। क्या देखती हूं कि ससुरजी उस दरवाजेको खोलकर मेरे घरमें प्रवेश कर रहे हैं। उनका चेहरा डरा हुआ दिखाई देता था। मैं झटसे पलंगसे नीचे उतर कर मुंह ढाँककर एक ओर कोनेमें जा खड़ी हुई। डरी हुई तो थी ही, मनमें सोचने लगी—"भगवान ? आज यह क्या अनहोनी हो रही है। वे धीरे धीरे मेरी ओर ही बढ़े चले आ रहे थे। मैंने इतने थोड़े समयमें ही अपना कर्त्तव्य निश्चित कर डाला।"

"अब मैं आनेवाली विपत्तिका सामना करनेके लिये तैयार हो चुकी थी। कुछ ही सेकेण्डमें वे मेरे इतने पास आ गये कि मुझे उन्हें मुँह खोलकर मना करना पड़ा। मैंने कहा,—पिताजी, इस समय आप यहाँ क्यों आये ? उन्होंने अपने मुँह पर हाथ रखकर मुझे चुप रहनेका इशारा किया, पर यह तो उनके मतलबकी बात थी। मैं उस संकटके समय भला कैसे चुप रह सकती थी ?"

"मैंने फिर मना करते हुए कहा,—आप वहीं खड़े रह कर जो कुछ मुझसे कहना हो, कहें वे वहीं खड़े रह गये; कुछ बोले नहीं। मैंने फिर कहा,—पिताजी, आप

अपने घरमें लौट जाइये। इस समय आपका मेरे घरमें इस प्रकारसे चला आना बहुत ही अनुचित हुआ है। यदि दूसरा कोई यह बात जान ले, तो आपके साथ ही मैं भी कितनी बेइज्जत होऊँगी, इस बातका भी आपने विचार किया है।"

"मेरे इस तरह कहनेपर भी वे वहाँसे नहीं टले। मैंने उनका मतलब भली भाँति समझ लिया। जिस दरवाजेसे वे आये थे, वह अभी ज्योंका त्यों खुला पड़ा था। मैं अवकाश पाते ही झटसे झपटकर उस दरवाजेसे दूसरे घरमें निकल गयी और उधरसे दरवाजा बंद कर लिया। वे किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुएसे वहीं खड़े रह गये। मैंने दरवाजेमें साँकल चढ़ा ली, उस घरका सदर दरवाजा पहलेसे ही बन्द था। आने-जानेके लिये बस ये ही दो मार्ग थे। मैं निश्चिन्त हुई। कलेजा अभीतक जोर-जोरसे धड़क रहा था।"

"थोड़ी तेर बाद मैंने सुना, मेरे घरका दरवाजा खुला उसमेंसे कोई बाहर निकला, यह भी सुन पड़ा। बादमें मकानकी ड्योढ़ी खुलनेकी आवाज हुई। ऐसा भी मालूम हुआ कि कोई बाहर गया है; पर मेरी हिम्मत न हुई कि मैं बाहर निकल कर देखूं। मैं तो चुपचाप वहीं बैठी रही।

बड़ी कठिनाईसे रात कटी, सुबह हुआ, नौकर चाकरोंके आनेका समय जानकर मैं दरवाजा खोलकर बाहर आकर क्या देखती हूं कि मेरे घरका दरवाजा खुला पड़ा है और आँगनमें एक कागज पड़ा हुआ हैं। मैंने उसे उठा कर पढ़ा। उसमें लिखा थाः—"

"बेटी! तुमने अपनी और मेरी दोनोंकी ही रक्षा की; इसलिये तेरे माता-पिताको अनेकानेक धन्यवाद है। अब मैं इस घरमें रहकर इस पापी मुँहको दिखाने लायक नहीं रहा। मैं संसारके किसी ऐसे स्थानमें जाकर छिपनेकी चेष्टा करूँगा, जिसमें मुझे फिर यह काला मुँह किसीको दिखानेकी आवश्यकता न पड़े। अन्तमें मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूं कि भगवान तुम्हारे पातिव्रत धर्मकी इसी तरह बराबर रक्षा करें।"

"मैंने उस पत्रको अपनी जाकेटमें रख लिया। नौकर चाकरोंके आनेपर कह दिया, कि बाबूजी किसी आवश्यक कार्यवश बाहर चले गये हैं। उन्हें पाँच सात दिन लगेंगे।"

"यथानियम घरका काम चलता रहा। माताजी और पतिदेव विवाहके कार्यसे निवृत होकर लौटे। मैंने सारी बातें उनसे कह कर वह पत्र उन्हें दे दिया।"

"पतिदेवने उनके लिये बहुत खोज-ढूँढ़ की; पर आज तक उनका कहीं पता न लगा। माताजी भी उनके वियोगमें थोड़े दिनों बाद ही स्वर्ग सिधार गयीं।"

"उस घटनाको आज आठ साल होते हैं। अब पतिदेव खूब तन्दुरुस्त हैं। इस समय मेरे दो लड़के और एक लड़की है, घरका काम बड़ी शान्तिके साथ चल रहा है। यही मेरी "आप बीती है।"

श्रीमती दया देवीजीकी "आप बीती" पूरी होनेके बाद आजकी सभाका कार्य समाप्त हुआ।

## चौथी बैठक

आज महिला-मण्डलकी चौथी बैठक है। इस अल्प समयमें ही मंडलने काफी उन्नति कर ली है। आज मंडलकी सदस्याओंकी संख्या हजारोंतक पहुँच गयी है। घर-घरमें इसकी चर्चा हो रही है। इसके स्वीकृत प्रस्तावों तथा इसमें होनेवाली आलोचनाओंसे महिला-समाजमें खूब उत्साह फैल रहा है। यही कारण है कि धड़ाधड़ इसकी सदस्य-संख्या बढ़ती जा रही है।

सभानेत्रीजीके आसन ग्रहण करनेपर मंडलका कार्य आरम्भ हुआ। सर्वप्रथम गत बारका कार्यविवरण पढ़कर सुनाया गया, जो सर्व-सम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

सभानेत्रीजीने हालमें ही हिन्दी क्लबकी ओरसे होने-वाली एक सभाकी ओर सदस्याओंका ध्यान आकर्षित करते हुए कहा—"उस सभामें यद्यपि महिलाओंकी उप-स्थिति नाम मात्रकी ही थी, तथापि सभानेत्रीकी हैसि-यतसे श्रीमती सौदामिनी मेहता तथा श्रीमती शन्नो देवी और कुमारी सरस्वती देवीने जो भाषण दिये उनसे पुरुष समाजको यह भली-भाँति विदित हो गया कि हमारी महिलाएँ अपने लिये किस तरहकी शिक्षा उचित सम-झती हैं।"

"तीनों ही विदुषी महिलाओंका इस विषयमें प्रायः एक मत था कि भारतीय महिला-समाजके लिये वर्तमान युनिवर्सिटियोंकी शिक्षा एक बारगी ही अनुपयुक्त सिद्ध हुई है। मेरी रायमें भी हमारी लिखी-पढ़ी बहिनें अधि-कांशमें विदेशी महिलाओंके आदर्शके अनुसार चलनेमें ही अपनी उन्नति मान बैठी हैं; परन्तु भारतका आदर्श तो और ही है। हमारे यहाँ तो त्यागको ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है, जो भारतीय नारीकी एक प्रधान प्रिय वस्तु है। विदेशी महिलाएँ तो हर बातमें पुरुषोंकी बराबरीका दावा करती हैं, फिर उनमें यह बात कहाँ मिल सकती है?

"हमें तो अक्षर-ज्ञानके साथ-साथ एक उत्तम गृहिणी बननेकी शिक्षाकी आवश्यकता है। आफिसोंमें जाकर किरानीगिरी तो करनी ही नहीं है जो बिना सार्टिफिकेटोंके कोई वहाँ घुसने न देगा। दूसरे, हमारे पढ़े-लिखे नवयुवकोंके लिये ही जब नौकरीका पूरा ठिकाना नहीं है, तब यदि हमारी बहिनें भी उनके मार्गको रोककर खड़ी हो जायेंगी तो रूपान्तरसे इस दोहरी मारका शिकार भी हम महिलाओंको ही बनना पड़ेगा। इस लिये हमारा कल्याण तो अक्षरोंके साथ-साथ गृह-शिल्पमें दक्षता प्राप्त करनेमें ही है। इसलिये प्यारी बहिनो, हमें इस विदेशी शिक्षाके मोहमें न पड़ना चाहिये।"

इसके बाद सभानेत्रीजीने श्रीमती सत्यवतीजीसे अपनी "आप बीती" सुनानेके लिये अनुरोध किया।

श्रीमती सत्यवतीजीने अपनी "आप बीती" इस तरह कहनी आरम्भ की—

"प्यारी बहिनो, अबतक आपने जो "आप बीती" सुनी है, उनसे मेरी "आप बीती" एकबारगी ही भिन्न है। जैसी कठिनाइयोंका मुझे सामना करना पड़ा है और आज भी करना पड़ रहा है, वैसी कठिनाईका आप लोगोंमें किसीको न तो अबतक सामना करना पड़ा है और भग-

वानसे मेरी प्रार्थना है कि भविष्यमें न किसीको करना ही पड़े।"

"मैं सात भाइयोंकी बहिन हूं और सातों भाई मुझसे बड़े हैं। सभी एकसे एक बढ़कर विद्वान हैं। पिताजी हाईकोर्टके जज हैं। एक भाई मुनसिफ हैं, दूसरे कोतवाल हैं, तीसरे वकील हैं, चौथे एक राजाके दीवान हैं। पाँचवें एक बड़े व्यापारी फार्मके मैनेजर हैं, छठे एक बड़ी बैंकमें खजांची हैं और सातवें, हमारी पैतृक जमींदारीका प्रबन्ध करते हैं। इस तरह सारा घरका घर धन बटोरनेके कामोंमें लगा हुआ है।"

"मेरे सभी भाइयोंकी शादी बड़े-बड़े धनवानोंके यहाँ हुई है, सबके यार दोस्त भी बड़े-बड़े लोग ही हैं; इसलिये बिना तीज--त्योहारके ही हमारे घरमें नित्य उत्सव-सा बना रहता था। सभी लोग पिताजीके भाग्यकी बड़ाई करते थे। लक्ष्मी और सरस्वती, जो एक साथ रहना पसन्द नहीं करतीं, वे दोनों ही हमारे यहाँ बड़े प्रेमसे निवास कर रही थीं। सात पुत्र और एक कन्याका होना भी हिन्दुओंके यहाँ सौभाग्यकी चरम सीमा समझी जाती है।"

"छोटे भैयासे भी मैं सात-आठ साल छोटी थी; इस-

लिये सभी भाभियोंके लिये मैं दुलारकी चीज बनी हुई थी, कभी इसकी गोदमें तो कभी उसकी गोदमें जाती आती रहती। इसी तरह मेरा बाल्य-जीवन आनन्दमें बीता है। घरमें सभी विद्याव्यसनी होनेके कारण मैंने भी मेट्रिक पास कर लिया था। भाइयोंकी इच्छा तो मुझे कालेजमें भर्ती करानेकी थी; परन्तु माताजीके स्वीकार न करनेके कारण यहीं पर मेरी पढ़ाई समाप्त हो गयी।"

"मेरे विवाहकी बात चली, बड़े बड़े आदमियोंके यहाँसे पैगाम आने लगे, चारों ओरसे शिफ़ारिसोंकी धूम मच गयी; परन्तु पिताजी धनके साथ सुपात्र भी चाहते थे। इसलिये उनकी कसौटीपर चढ़ने योग्य पात्र बड़ी कठिनाईसे प्राप्त हुआ। अच्छा घर, काफी पढ़ा लिखा, शरीरसे हृष्ट-पुष्ट, चम्पाके फूलसा रङ्ग और स्वभाव तो एक दम देवताओंकासा था।"

"वैवाहिक कार्य बड़ी धूमधामके साथ सम्पन्न हुआ। इस कार्यसे अपने-पराये सभी लोग पिताजीके सौभाग्यको सौ सौ मुँहसे सराहने लगे।"

"अपनी इतनी अधिक सुख्याति सुनकर माताजीको एक प्रकारका भय-सा लगने लगा। वे जब-तब कहा करती कि भगवानसे मेरी यही प्रार्थना है कि अब वे मुझे

बुला लें। मेरे पिताजीकी ओर इशारा करके कहतीं कि इनके कंधोंपर चढ़के चला जाना ही मेरे सौभाग्यकी अन्तिम सीमा है। पर मनुष्य विचारता कुछ है और होता कुछ और ही है। मेरा सौभाग्य सूर्य तीन सालतक खूब तेजीसे चमकता रहा। पतिदेव एम० ए० पास करके अपने बड़े भारी कारबारमें अपने पिताका हाथ बँटाने लगे थे। नियमित रूपसे व्यायाम करते रहनेके कारण उनका शरीर तपाये हुए सोनेकी तरह हर समय चमकता रहता था, अभिमान तो उनके पाससे छूकर भी नहीं निकला था जब देखो तब हँसता हुआ चेहरा, अपने कामसे काम, "न ऊधोका लेना न माधोका देना" इसी कहावतके अनुसार हर समय अपने कामोंमें ही लगे रहते थे।"

"मेरी उस समयकी अवस्थासे बैरियोंको भी ईर्षा होती थी, पिताके घरमें सात भाइयोंकी बहिन होनेके कारण घरमें मेरे आदर सत्कारका कहना ही क्या था, यहाँ भी मैं ही सास-ससुरकी आँखोंका तारा थी। पतिदेवकी भी कम कृपा नहीं थी। धनकी तो बात ही क्या था, जो चाहूं, खरचूँ खाऊँ और दूँ-लूँ कोई चूँ करनेवाला नहीं था।"

"ऐसी ही अवस्थामें एक दिन अकस्मात् मेरे सरपर

वज्र आ गिरा ! पतिदेव गङ्गा-स्नान करने गये थे। भादों-की चढ़ी हुई गङ्गा थी। नहाकर किनारे पर कपड़ा बदल रहे थे कि अचानक पाँव फिसल गया, धड़ामसे जोरोंसे बहती हुई गङ्गाकी धारामें जा गिरे। घाटपर उस समय सैकडों आदमी स्नान कर रहे थे, बहुत हो हल्ला मचा, पासमें खड़ी नावोंके मल्लाहोंने भी काफी चेष्टा की; पर न जाने क्या बात हुई कि गिरे सो गिरे—फिर एक बार भी ऊपर नहीं उठे। जब यह खबर घरमें पहुँची, तो मेरे सारे शरीरको एकदम काठ-सा मार गया। घर भरमें कोहराम मच गया। घरके लोग जो जहाँ थे, दौड़कर घाटपर जा पहुँचे। गोताखोरोंका प्रबन्ध किया गया, मुँह माँगे इनामका लालच दिया गया, उन बेचारोंने भी खोजनेमें कोई कोर कसर नहीं रखी; पर लाशका पता नहीं चला, ढूँढ़-ढाँढ़कर सब हार गये, रो पीटकर लौट आये। वह दिन है और आजका दिन, न जाने उनके शरीरकी क्या गति हुई—किसीको भी पता नहीं चला।"

"माताजीकी तो बात ही मत पूछिये, वे तो बराबर यही कहती थीं, कि भगवानने मेरे सौभाग्यसे ईर्षा करके मेरी यह दुर्गति की है। बेचारी भाभियाँ अपने दुःखको

भूलकर माताजीको सम्हालनेमें ही लग गयीं। परन्तु वे तो उस दिनकी खाटमें पड़ी हुई मर कर ही उस दुःखको अपने साथ ले गयीं; माताजीकी मृत्युके बाद पिताजी भी अपनी नौकरीसे इस्तीफा देकर काशीमें रहने लगे। भाई और भाभियाँ भी बरसों मेरे दुःखसे दुःखी होकर हँसना हँसाना भूली गयीं थीं।"

"सास और ससुरकी तो बात ही मत पूछिये। जब कभी मैं उनके सामने पड़ जाती, छाती फाड़कर रोने लगते। मेरी क्या अवस्था हो रही थी, इसको क्या तो मैं जानती थी और क्या अन्तर्यामी भगवान! मेरे ही कारण सब जगह अन्धकार ही अन्धकार छाया हुआ दिखाई देता था।"

"महीनों तो मेरे मनको यह विश्वास ही नहीं हुआ कि मैं विधवा हो गयी हूं। मेरा मन तो यही कहता था कि वे अब आये अब आये; पर घंटों एक टक द्वारकी ओर देखते-देखते आँखें पत्थरा जानेपर भी कुछ दिखाई नहीं देता था, दिखाई देता भी तो क्या? कुछ होता तब तो दिखाई देता।"

"योंही दिन बीतने लगे। पतिदेवके काम सम्हाल लेनेसे ससुरजीने काम-काजसे अपना हाथ खींच लिया

था। पर अब सारे कारबारका भार अपने ऊपर आ पड़नेसे वे एकदम घबरा गये; जिनमें पावना था उनकी तरफसे एक पैसा आया नहीं, जिनका देना था उन्हें पैसा-पैसा चुकाना पड़ा। सारीकी सारी रकम न जाने कहाँ बिला गयी। जो कुछ थोड़ा बहुत बचा समेट समाटकर वे भी दोनों प्राणी काशी चले गये। मैं अपनी भाभियोंके पास रहने लगी।"

"दिन जाते देर नहीं लगती। यद्यपि मेरे लिये वे दिन पहाड़से भी बड़े थे, पर उससे किसीका क्या हानि-लाभ था, संसारका कार्य तो नियमित रूपसे चला ही जा रहा था। जिन भाभियोंके लिये मैं फूलसे भी हलकी हो रही थी, अब उनको भी मैं भारी लगने लगी। उन्हें रोज राग-रङ्ग चाहिये, परन्तु मेरे रहते वे वैसा कर नहीं सकती थीं; इसलिये सभी यह चाहने लगीं कि किसी प्रकार मेरे बोझसे वे मुक्त हों। मैं भी उनके इस भावको समझ गयी। पिताजी तो बीच-बीचमें बराबर ही मुझे काशी बुलानेके लिये पत्र लिखते रहते थे, पर बड़े भय्याने यह सोचकर कि माताजी-के न रहनेसे यह अकेली वहाँ कैसे रह सकती है मुझे वहां भेजना स्वीकार नहीं करते थे? पर अब स्त्रियोंका बदला हुआ रुख देखकर उन्होंने भी मेरा काशी रहना ही उचित समझा। इस बार पिताजीका पत्र आनेपर एक

भाई मेरे साथ काशी जाकर मुझे वहाँ पिताजीके पास पहुँचा आये।"

"काशीके वातावरणमें तथा पिताजीके पास रहनेसे मुझे बहुत कुछ शान्ति मिली, पिताजीको भी मेरी सेवाओंसे कुछ आराम मिला; परन्तु सास और ससुरजी जो वहीं रहते थे, मुझे देखकर अपने भूले हुए दुःखको पुनः याद कर करके अस्थिर होने लगे, मैं उनकी सेवा करनेमें किसी बातको उठा नहीं रखती थी, जिसके फलस्वरूप वे भी मुझे बहुत चाहने लगे थे। यह चाहना ही उन्हें अपने मृत-पुत्रकी याद दिला-दिलाकर व्याकुल करने लगा।"

इन काशीनिवासी शान्त परिजनोंके बीचमें आकर अपने दुःखके दिन काटनेमें मुझे बहुत कुछ सहायता मिलने लगी थी; पर जो लोग मेरे पतिके वियोगको अधिकांश रूपमें भूलसा गये थे, वेही अब अपनी अन्य सारी दिनचर्याको भूलकर रात-दिन उन्हींकी चर्चा करने लगे। यद्यपि मैं भी भाइयोंके पास रहते समय अपने स्वर्गस्थित पतिकी यादगारीमें ही अपना अधिक समय बिताती थी, पर यहाँ आकर तो वह इतनी अधिक बढ़ गयी कि आठों पहर उनका चित्र आँखोंके सामने घूमने लगा—वही हृष्ट

पुष्ट गौरवर्ण, शरीर हँसता हुआ शान्त मुख, लज्जासे झुकी हुई रसभरी आँखें, हूबहू दिखाई देती रहती थीं।

अचानक पटपरिवर्तन हो गया, एक दिन पिताजी एक अखबार लेकर ससुरजीके पास आये, जो बड़े भाई-जीने भेजा था। उसमें एक जगह लाल पेन्सिलसे निशान लगाया हुआ था जिसका मतलब देखनेवालोंको उस लेखको पढ़नेके लिये अनुरोध किया गया था। पत्रमें भी उन्होंने पिताजीको दबी जबानसे उस लेखपर विचार करनेका अनुरोध किया था।

वह लेख किसी जातीय सभाके एक प्रस्तावको लेकर लिखा गया था, जो विधवाओंका पुनर्विवाह करानेके सम्बन्धमें था। ससुरजी जब उस लेखको पढ़ चुके तब पिताजीने इस प्रकार कहना आरम्भ किया, 'लड़कोंने लिखा है कि यदि आपकी आज्ञा हो तो बहिनका पुनर्विवाह कर दिया जाये।' ससुरजी इस प्रस्तावको सुनकर एकदम चौंक पड़े। उन्होंने कहा 'कभी यह बात भी सम्भव हो सकती है?' पिताजी बोले 'देखिये, हम लोग अपने अन्तिम दिन शान्तिसे बिता रहे थे। यदि लड़कीका कुछ इस तरहका प्रबन्ध हो गया होता, तो आज हमारी शान्तिमें बाधा पड़नेका और कोई कारण नहीं था।

मैं भी पासके घरसे ये सब बातें सुन रही थी। बहुत कुछ सोचनेके बाद उन लोगोंने मुझे बुलाया और मेरी इस विषयमें क्या राय है पूछा। मैं इसका क्या उत्तर देती? भीतर ही भीतर मेरा मन रो उठा। हा भगवान्! अपना पिंड छुड़ानेकी गरजसे जब घरके ही लोग इस तरह मेरा बलिदान करनेके लिये तैयार हो गये हैं, तब अब मैं क्या कहूं; मेरी जैसी बालिका जिसने अपने पतिके सिवा स्वप्नमें भी कभी दूसरेकी आशा न की हो, अपने परम पूज्य बड़ोंके द्वारा इस तरह पथभ्रष्ट होनेका आदेश पा रही है, तब मुझे हाँके सिवा और क्या कहना चाहिये। मैंने कहा, 'इस विषयमें मेरी राय की क्या आवश्यकता है? जैसा आप उचित समझें, करें। परन्तु इतना मैं कह देना उचित समझती हूं कि मेरी इच्छा पुनर्विवाह करनेकी बिलकुल नहीं है।

पिताजी और ससुरजी दोनोंने ही मेरी इस अस्वीकृतिको दुनियादारी समझा। हा भगवान! संसारमें अपने सुभीतेके लिये लोग इस तरह दूसरोंका हँसते खेलते वलिदान कर डालते हैं, इसको तुम्हारी लीला छोड़ कर और क्या कहा जा सकता है।

विधवा विवाहके पक्षपातियोंसे बात-चीत चली, बड़-

बड़े दिग्गज सुधारकोंसे अपने अविवाहित पुत्रोंके साथ मेरा लग्न ठीक करनेका अनुरोध किया गया, पर सारेके सारे कान मूँद कर दूर जा खड़े हुए। किसीने भी ऐसा करना स्वीकार नहीं किया, कोई कोई तो यहाँतक कह बैठा कि सभा सोसाइटियोंमें प्रस्ताव कर देने या समर्थन कर देनेका यह अर्थ थोड़े ही हो जाता है, कि हमको अपने घरकी विधवाओंका विवाह करना पड़ेगा या अपने लड़कोंको विधवाओंके साथ ब्याहना पड़ेगा? यदि लोग ऐसा समझते हों तो यह उनकी भूल है। हम तो सिर्फ अपनी राय देने भरके जिम्मेदार हैं।

जो भी हो, बात निकल चुकी थी। विवाह होना ही चाहिये। अन्तमें एक विधुर महाशय सामने आये, जिनकी दो पत्नियाँ पहले मर चुकी थीं। उनके तीन चार बालक भी मौजूद थे। रूप भी देखने ही योग्य था! आर्थिक स्थिति भी साधारण सी थी, स्वभाव चिड़चिड़ा था। उन्हें देखकर घरके लोग बहुत पछताये, पर क्या करते? तीन चार महीने उद्योग करके भी जब योग्य वरका प्रबन्ध न हो सका तब इसे ही स्वीकार करना पड़ा।

विवाह हो गया; घरवालोंने रोते या हँसते-जो भी कहिये—विदाई कर दी। मैं नये घरमें आयी। अपने बाबा

की न सही, चाचाकी उमरके दुलहेके साथ नाता जोड़ा, पहली मुलाकातमें ही मुझे अंधेरी सी आने लगी। हा भगवान! कहाँ मेरे वे प्राणपति और कहाँ यह? दोनोंमें किसी बातकी भी समानता नहीं। मैंने उनसे साफ शब्दोंमें कह दिया, आपका और मेरा मन नहीं मिल सकता। मेरे भीतर एक देवताकी स्थापना हो चुकी है, वहाँ अन्य किसीको बैठनेकी तिल भर भी जगह नहीं है; इसलिये आप उस जगह बैठनेकी कतई चेष्टा न करें। हाँ, यह शरीर आपका है। इससे आप जैसा चाहें, वर्ताव करें।

प्यारी बहिनों! उन्होंने जितना भी उद्योग करना था, मेरे मनपर अधिकार करनेका किया, पर सब बेकार कुछ दिन बाद उन्होंने भी अपनी भूलको समझ लिया और अब हम ठीक उसी तरह अपने दिन बिता रहे हैं, जिस तरह किसी स्टेशन पर आ मिले हुए दो यात्री जो भिन्न-भिन्न दिशामें जानेका विचार रखते हुए भी एक जगह आ ठहरते हैं।

"बहिनों, मेरी कथा पूरी हो चली है, सिर्फ एक बात और कहनी है, वह भी कह देना उचित समझती हूं। हमारे जो भाई विधवाओंपर दया करके इतनी करुणा दिखा रहे हैं, उन्हें हमारी नारी-जाति पर रहम करके इस

कामसे हाथ खींच लेना चाहिये। क्योंकि मेरी जैसी जिन दस पाँच बहिनोंने पुनर्विवाह कर लिया है, उनमेंसे अधिकांशने परिस्थितिके थपेड़ोंके कारण ही ऐसा कर डाला है। हो सकता है कि ऐसे विवाह होनेके पहले उनकी धारणा दूसरी रही हो; पर विवाहके बाद जिन मानसिक कठिनाइयोंका उन्हें सामना करना पड़ता है, वे सहस्र बारके वैधव्यसे भी कहीं बढ़कर कठोर हैं। इसलिये मेरे उन भाइयोंको चाहिये कि नारी-जातिके भले-बुरेका फैसला करनेका भार वे नारी-जाति पर ही छोड़ दें।

# पाँचवीं बैठक

महिलाओंके विराट समूहमें आज मण्डलकी पांचवीं बैठक हो रही है।

सभानेत्रीजीने अपना आसन ग्रहण करते हुए कहा—"आजकी उपस्थिति देखकर मैं फूली नहीं समा रही हूं। मैं कुछ दिन पहले यह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि इस थोड़ेसे अर्सेमें ही आप इतनी बड़ी संख्यामें इस मण्डलके कार्योंमें भाग लेने लगेंगी।

श्रीमती गोमतीदेवीको सम्बोधन करते हुए सभानेत्रीजीने उनसे अपनी "आप बीती" सुनानेका अनुरोध किया। श्रीमती गोमती देवीने अपनी "आपबीती इस तरह सुनाना आरम्भ किया—

## पाँचवीं बैठक

"प्यारी बहिनो, मेरी "आप बीती" तो आरम्भसे लेकर अन्ततक एक करुणाकी कहानी है। जन्मसे माताजी स्वर्ग सिधार गयीं। वृद्धा-दादीजीकी गोदमें ही बाल्य-काल बिताया। जब सात सालकी हुई तब दादीजी भी माताजीकी तरह चल बसी। घरका सारा भार भाभीजी पर आ पड़ा, यद्यपि उमरमें वे बहुत बड़ी नहीं थीं, उस समय यही कोई सतरह-अठारह वर्षकी होंगी, पर बोझ आ पड़नेसे धीरे-धीरे सब गृहस्थीके काम उन्होंने सम्हाल लिये। नियमानुसार घरका काम चलने लगा। इस तरह और भी दो-तीन वर्ष बीत गये। अब मैं भी भाभीजीके कामोंमें कुछ सहायता पहुँचाने लगी; परन्तु यह सहायता पहुँचाना मेरे लिये अच्छा नहीं हुआ। मेरा जो कुछ थोड़ा-बहुत पढ़ना लिखना होता था वह कुछ दिनों बाद इस कारणसे एकबारगी ही बन्द हो गया। पढ़ना-लिखना तो बन्द हो गया, पर थोड़े दिनोंमें ही, मैं घरका काम करनेमें खूब होशियार हो गयी। भाभीजी जब तब भैयाके सामने मेरी प्रशंसा करते हुए कह दिया करती कि 'अब गोमती बाई घरका सब काम कर लेती हैं, मुझे तो हाथ ही नहीं लगाने देती, पर असल बात यह थी कि, वे किसी काममें अब हाथ लगाना ही नहीं चाहती थीं। अवश्य ही

दस-ग्यारह सालकी एक बालिका अपनी शक्तिके अनुसार चेष्टा करनेपर भी जो नहीं कर पाती थी, उसमें वह बराबर सहायता कर दिया करती थीं। उनका स्वभाव अच्छा था, काम तो लेती थीं, पर मीठी बातें कहकर। खाने-पहननेमें भी उदारतासे काम लेती थीं,यह तो कह ही चुकी हूं। दूसरोंके सामने मेरे कामोंकी मुक्त-कंठसे प्रशंसा करती रहती थीं, इसलिये इतना सब करके भी मेरा चित्त खूब प्रसन्न रहता था।

इसी तरह काम-काज करते-करते दो-तीन साल और बीत गये। अब मैं तेरह साल पार कर चुकी थी। बराबर मेहनत करते रहनेसे शरीर खूब पुष्ट हो गया था। रङ्ग तो गोरा था ही, अब सारे अङ्ग पूर्णरूपसे भर जानेसे वह और भी सुन्दर लगने लगा; यद्यपि स्त्रियोंके स्वभावानुसार भाभीजीकी ओरसे मेरे विवाहकी चर्चा होती ही रहती थी, पर अब भाई साहब भी बीच-बीचमें इस विषयमें कुछ कहा सुनी करने लगे थे,पिताजीने भी दो एक बार बात चलायी। सम्बन्धके लिये खोज-ढूँढ़ जोरोंसे चलने लगी। अन्तमें सम्बन्ध ठीक हुआ, घर और वर तो अच्छा मिल गया, पर मालकिनका स्वभाव बहुत तेज सुना गया, सारा घर उनसे पीपलके पत्तेकी तरह काँपता था, अड़ोसी-

पड़ोसी भी उनकी धाक मानते थे। पिताजीने और भाई जीने यह सब बातें सुनीं, एक बार तो मन कुछ पीछे हटा, पर और कोई दूसरा सम्बन्ध सामने दिखाई न देनेके कारण अन्तमें मन मसोस कर यहीं बात पक्की करनी पड़ी।

दहेजकी बात कुछ अधिकमें तय हुई थी, बहुत समझाने बुझाने पर भी जब सौदा नहीं पटा, तब मुँह माँगा देना ही तय हो गया।

बारात खूब धूमधामसे आयी, चार दिनतक खूब गुल-छर्रें उड़े, बरातियोंकी खातिर करनेमें कोई कोरकसर नहीं रखी गयी; विवाह आनन्द-पूर्वक सम्पन्न हो गया। बिदाईका समय आया। दहेज वादेके अनुसार नहीं था, ससुरजीने दबी जबानसे थोड़ा प्रतिवाद किया, पर पिता-जीके उदास मुँहको देखकर अधिक दबाव नहीं डाला। परन्तु सासजी पूरा दहेज न देखते ही अपने असली रूपमें आ गयीं, लड़केका विवाह हुआ है, बहू घरमें आयी है, चारों ओर आनन्द छा रहा है, इन बातोंकी ओर उन्होंने कुछ भी ध्यान नहीं दिया। भीषण-रण चण्डीका रूप धारण करके वे दहेजके सारे सामानको इस तरह फेंकने लगीं, मानो उनको घरमें उठाकर रखनेसे सारा घर अप-

विन्न हो जायेगा। चीजोंको उठा-उठाकर फेंकती जाती थीं, और कहती जाती थीं कि जब वादा पूरा करनेकी हिम्मत नहीं थी, तो हमारे साथ क्यों सम्बन्ध किया? मैं तो पहले ही कहती थी कि उनके यहाँ क्या रखा है। यदि मर पड़ कर इस समय कुछ दे भी देंगे तो बादमें तो वहाँसे एक पाई भी मिलनेकी नहीं है, बिना माँकी लड़कीको फिर कौन पूछता है, पर सब उनके लम्बे-लम्बे वादोंपर लट्टू हो गये, मैं तो इस कंगालकी बेटीको एक दिन भी घरमें नहीं रखूँगी। संसारमें लड़कियोंका क्या घाटा है, एकसे एक बड़े आदमी हमारे साथ सम्बन्ध करनेको तरस रहे हैं, कल ही अपने लालका दूसरा विवाह कर लूंगी।

सबके सब चुपचाप खड़े उनका तांडव नृत्य देख रहे थे। किसीकी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उनकी बातों-का उत्तर दे। यदि साहस करके किसीने कुछ कहना भी चाहा तो वे उसपर शेरनीकी तरह इस प्रकार झपटीं, मानो उसे कच्चा ही चबा जायेंगी। उनके इस तरहके रङ्ग-ढङ्गको देखकर एक-एक करके सब वहाँसे खिसकने लगे। थोड़ी देरमें घरका वह बड़ा आँगन इस तरह खाली हो गया मानो बाजके झपाटेसे सारी चिड़ियाँ उड़

गयी हों। ससुरजीके बहुत कहने-सुनने और खुशामद-बिनती करनेपर देवीजीका क्रोध कुछ शान्त हुआ, पर इसी शर्तपर कि दो एक दिन रखकर मुझे अपने बापके यहाँ भेज दिया जायेगा, और वे अपने पुत्रका दूसरा विवाह कर लेंगी।

नव बधुओंका सभी जगह काफी आदर-सम्मान होता है, पर मेरे आदर-सम्मानकी कौन कहे, पानी पीने-तककी बात किसीने न पूछी। दोपहरको जब सासजी अपने कमरेमें जाकर किवाड़ बन्द करके सो गयीं तब एक छोटीसी बालिका जो रिश्तेमें मेरी ननद होती थी, चुपकेसे मेरे पास आयी और हाथ पकड़के बगलके घरमें ले गयी। वहां पहुंचकर वह तो तितलीकी तरह तुरन्त भाग गयी। पर मैंने सर उठाकर देखा तो सामने पतिदेवको बैठे हुए पाया। पहले तो मुँह खोलते कुछ लज्जा प्रतीत हुई, पर जो घटना घट चुकी थी, उसे देखते इस तरह लज्जा करनेसे काम नहीं चलेगा, यह समझकर मैंने सकुचाते हुए उनसे प्रार्थना की कि जब माताजी मुझे घरमें रखना नहीं चाहती हैं तो शायद आप भी उनकी इच्छाके विरुद्ध चलना पसन्द नहीं करेंगे, ऐसी अवस्थामें मुझे क्या करना चाहिये, इस सम्बन्धमें आपकी आज्ञा जानना चाहती हूँ।

उन्होंने बड़े ही संकोचके साथ कहा—प्रिये, जबसे तुम्हारे साथ मेरा विवाह होना तय हुआ था, तबसे मैं किस तरहके हौसले बाँध रहा था, यह मेरा मन ही जानता है। पर माताजीकी इच्छाके सामने हम लोगों-की एक भी नहीं चलेगी। जो मुँहसे कह देती हैं, उसका वे अक्षरशः पालन करती हैं, घर भरमें किसीकी मजाल नहीं कि उनकी इच्छाको रोक सकें, जो कहा है, उसे वह अवश्य पूरा करेंगी, ऐसी अवस्थामें मैं तुम्हें घरमें कैसे रख सकता हूँ ? यह जानते हुए भी कि दूसरा विवाह कर लेनेसे मेरा जीवन एकबारगी ही बरबाद हो जायेगा, उनकी एक बातका भी विरोध करनेकी मेरी हिम्मत नहीं है। मैं पढ़ा-लिखा हूँ, अच्छे-अच्छे विद्वानोंका मेरा साथ है, पर वे सब बातें घरके बाहरकी हैं, यहाँ आकर तो जो माताजीके मुँहसे निकले, उसका हम सभी, पिताजी तक, अक्षरशः पालन करना ही अपना धर्म समझते हैं—चाहे वह उचित हो या अनुचित।

जबसे मैंने होश सम्हाला , तबसे अबतक मैंने तो इस घरमें उन्हें एकछत्र राज करते पाया है। जब दादीजी मौजूद थीं तब भी माताजीकी ही चलती थी। पिताजी-के सामने भी उन्हींकी चलती है और मैंने भी उनकी

इच्छाके अनुसार ही चलना अपना धर्म बना लिया है। ऐसी अवस्थामें वे तुम्हें अब अपने जीते-जी इस घरमें कभी स्थान नहीं देंगी। तुम यह कह सकती हो कि इस घरमें न सही आप मुझे दूसरी जगह रख सकते हैं; पर मैं ऐसा नहीं करूँगा। यदि ऐसा करनेका मैं साहस भी कर बैठूँ तो या तो मुझे भी तुम्हारे साथ जन्मभरके लिये उनसे सम्बन्ध विच्छेद करना पड़ेगा या वे ही इस घरसे निकल जायेंगी या आत्मघात कर बैठेंगी, जो मुझे किसी हालतमें भी स्वीकार नहीं है।

प्यारी बहिनो, अपने एकमात्र इष्टदेवके ये शब्द सुनकर मेरे मनकी क्या अवस्था हुई होगी यह मेरी तरहकी कोई हतभागिनी ही अनुभव कर सकती है। मैं इसका क्या उत्तर देती, चुपचाप खड़ी खड़ी सुनती रही। वे फिर कहने लगे—प्यारी! मैं जानता हूँ कि अग्नि और पाँच पंचोंकी उपस्थितिमें ग्रहण करके तुम्हें इस तरह धोखा देना महापाप है पर क्या करूँ? मैं विवश हूं, जिस तरह तुम्हारे प्रति मेरा कर्त्तव्य है, उसी तरह या उससे भी बढ़कर माताके प्रति भी मेरा कर्त्तव्य है, ऐसी अवस्थामें उचित समय आनेतक तुम्हें यही समझकर अपने दिन बिताने होंगे, मानो तुम्हारे लिये मैं इस संसारमें ही नहीं हूं।

शान्त हुआ, मैंने पहलेकी तरह घरके काम-काजमें भाभी-का हाथ बँटाना आरम्भ कर दिया। घरका काम नियमित रूपसे चलता रहा, परन्तु पहलेकी तरह अब मैं निश्चिन्त मनसे काम नहीं कर सकती थी। न जाने क्यों, मुझे अब यह अपना-सा घर नहीं लग रहा था, जान पड़ता जैसे मैं किसी दूसरेके घरमें दासीकी तरह काम कर रही हूं।

कुछ दिन बाद सुना कि पतिदेवका दूसरा विवा हो गया। वे बहुत बड़े आदमी थे, दहेज भी खूब मिला यह भी सुना कि सासजीकी इच्छासे भी उन्होंने बहुत अधिक दिया। यद्यपि लोगोंमें इस विवाहके विषयमें काफी आलोचना हुई, पर हुआ करे, उन्हें इसकी क्या परवाह थी; उन्हें तो अपनी जिद् पूरी करनी थी।

मेरी अवस्था बहुत ही बुरी होती चली जा रही थी, न भोजन अच्छा लगता न काम। दिनभर मशीनकी तरह काम करती रहती, भोजनके समय दो-चार ग्रास लेकर योंही थाली सरका देती, रातभर बैठी रोया करती, पर मेरे इस दुःखमें कोई हाथ बँटानेवाला नहीं था। भाभी भी अब उतनी सहानुभूति नहीं रखती थी, कसके काम लेना ही उनका ध्येय हो रहा था। पहले बालिका

समझकर जिन कामोंको वे आप कर लेती थीं, अब वे सब भी मुझे ही करने पड़ते थे; क्योंकि अब मैं उन कामोंके करने योग्य हो गयी थी। मुझे काम करनेमें कोई आपत्ति भी नहीं थी; पर दुःखके मारे दिन-दिन शरीरकी शक्ति कम होती चली जा रही थी, मैं चेष्टा करनेपर भी काम पूरा नहीं कर सकती थी।

पहले तो साधारण रूपसे उलाहना देकर ही भाभी सन्तोष कर लेती थीं, पर कुछ दिन बाद तिरस्कार-अपमान करने लगीं, न जाने क्या-क्या कह डालतीं। पिताजी और भैया कभी-कभी मेरे कष्ट और उतरे हुए चेहरेको देखकर दो एक सहानुभूतिकी बातें कह देते, पर उनसे मेरा क्या बनता बिगड़ता था? मेरे दिन तो उस लक्षहीन अन्धकारमें ही बीत रहे थे। दिन बहुत बड़े थे, रातें उनसे भी बड़ी थीं; शरीर सूखकर काँटा हो गया था। पर तो भी दो साल बीत ही गये। ऐसा एक भी दिन नहीं जाता था, जिस दिन भाभीकी फटकार और गालियाँ न सुननी पड़ी हों। इस बीचमें भाभीके बच्चा हुआ, घर भरमें खुशी फैल गयी, भैयाकी तो बात ही क्या, पिताजी तक धरतीसे दो अंगुल ऊपर चल रहे थे, भाभीके आदरका तो ठिकाना ही नहीं था। मुझे इससे

कम आनन्द नहीं हुआ, पर दूसरी ओर मेरा काम इतना अधिक बढ़ गया कि मेरे दो हाथोंसे वह किसी तरह भी पूरा नहीं हो पाता था; भाभीके द्वारा मेरी लांछना और भी अधिक बढ़ गयी, बीच-बीचमें भैया भी डट-फटकार बताने लगे, पर मैं विवश थी। भरसक कामको पूरा करनेमें मैं कोई बात उठा नहीं रखती थी, लाख जतन करने पर भी मैं उन्हें किसी तरह सन्तुष्ट न कर सकी।

इसी चक्कीमें पिसती-पिसती अन्तमें मैं बीमार पड़ गयी, बीमार तो मैं बहुत पहले ही पड़ चुकी थी पर वे लोग इसे कामसे जी चुरानेका बहाना समझ रहे थे। बीच-बीचमें इस तरहके शब्द कह भी डालते थे।

एक दिन अकस्मात् पिताजी मेरे पास आ बैठे, प्यारसे उन्होंने मेरे शरीरपर हाथ फेरना चाहा। जैसे ही उनके हाथका मेरे शरीरसे स्पर्श हुआ, वे चौंक उठे। शरीर इतना अधिक गर्म हो रहा था मानो भट्टीमें हाथ दे दिया हो। उन्होंने भैयाको बुलवाया। पहले तो भैयाने इस बातका विश्वास ही नहीं किया, पर जब पिताजीने मेरा हाथ उनके हाथपर रखा तब वे भी चौंक पड़े; तुरन्त डाक्टरको बुलाया। उन्होंने जाँच कर कहा इस समय इसको १०४ डिग्री बुखार है, यह आजका नहीं है, यह तो

बहुत पुराना है। कमसे कम दो महीनोंसे यह इसे भुगत रही होगी। डाक्टरकी बात सुनके सब अवाक् रह गये। भैयाको अपनी भूल मालूम हो गयी। वे तो भाभीसे जैसा सुनते थे उसीपर विश्वास कर लेते । आज उनकी आँखें खुलीं। एक ही साथ हम दोनोंको—भाभी-को और मुझको—उन्होंने पहिचाना। इलाज असम्भव हो गया। घण्टों वे मेरे पास बैठे रहते, अपने हाथसे दवा-पानी देते, पथ-परहेज कराते, नाना प्रकारसे सान्त्वना देकर मुझे समझाते। बीच-बीचमें अपनी भूलके लिये भी दुःख प्रकट करते। भैयाके इस तरहके वर्तावसे मेरे मनमें कुछ शान्तिका अनुभव होने लगा। धीरे-धीरे रोग भी घटने लगा, पर बहुत पुराना होनेके कारण बहुत दिनों कष्ट पानेके बाद मैं खाटसे उठने योग्य हुई। अब भाभीका वर्ताव भी पहलेसे एकबारगी बदल गया था। मेरे जिम्मे सिर्फ लड़केकी देख-भालका काम रह गया था, सो भी मेरी आन्तरिक इच्छाके कारण ही, बाकी सब काम वे आप ही कर लेती थीं, मेरे निरोग हो जाने-के बाद मेरे आग्रह करने पर भी वे मुझे काममें हाथ नहीं लगाने देती थीं। कहा करती थीं कि तुम्हारे साथ मैंने बहुत अन्याय किया है, भगवान जाने उस अपराधसे

मेरा छुटकारा होगा या नहीं। तुम जैसी गायको तुम्हारे अत्यन्त दुःखके समय तुम्हें मैंने कितना कष्ट दिया है, यह मैं ही जानती हूं। मैं उन्हें सन्तोष देती हुई कहती—भाभी इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है; यह तो मेरे अदृष्टका ही ही दोष था; नहीं तो तुम जैसी भाभीके द्वारा मुझे कभी कष्ट नहीं उठाना पड़ता।

इसी तरह दुःख-सुखसे दिन कट रहे थे कि एक दिन अचानक मेरी ससुरालका आदमी मुझे बुलानेको आया। घरमें सभीको आश्चर्य हुआ; पहले तो विश्वास ही नहीं हुआ। जब आदमी भेजकर बातकी असलियत मालूम की गयी; तो सबको बड़ा आनन्द हुआ; मुझे हँसी-खुशी बिदा कर दिया गया। पर ससुराल जाकर देखा कि मेरा मन खुश होनेपर भी चारों ओर उदासी छाई हुई है।

कुछ देर बाद असल बात मालूम हुई; सासजीके कठोर स्वभावके कारण नयी बहूकी उनसे नहीं पटी। आये दिन महाभारतका युद्ध मचा रहता था। सास एक कहतीं तो बहू चार सुनाती; न वह ससुरकी सुनती थी न पतिकी—जो जीमें आता करती। पहले तो नयी बहू समझकर सासने भी उसके अत्याचार सहे, पर बादमें

उन्हें बहूकी स्वेच्छाचारिता अखरने लगी। पहले मीठे शब्दोंसे समझाया, बादमें कुछ आँखें लाल करके डराया, इसके बाद कुछ हलके प्रहारकी नौबत आ पहुँची, बादमें झाड़ूलाठीका उपयोग आरम्भ हो गया। पर इधरसे ईंटके बदले पत्थरसे बराबर उत्तर मिलता चला गया। रात-दिन घरमें कलह मची रहती। अन्तमें एक दिन छोटी बहूको मायकेसे आदमी लिवानेको आये, और उन्होंने ससुरजीसे समधीके सन्देशको खुले शब्दोंमें कह सुनाया, कि आपके घरमें भले घरकी लड़कियाँ नहीं रह सकतीं, हम ऐसे सुहागसे बाज आये। हमारी कन्याके लिये हमारे यहाँ दो रोटियोंकी कमी नहीं है, कृपाकर हमारे आदमियोंके साथ उसे तुरन्त भेज दें। यदि दामादकी इच्छा हो तो वे भी साथ ही चले आयें, उनके हर प्रकारके सुखका प्रबन्ध कर दिया जायेगा।

माँकी बिना मर्ज़ीके दामाद तो क्यों जाने लगे थे; पर बहूको उसी समय बिदा कर दिया गया।

पहले सासने बेटेका तीसरा विवाह करनेका विचार प्रकट किया, पर पिता-पुत्र दोनोंके साफ शब्दोंमें इसका विरोध करनेसे उनके मिजाजका पारा कुछ नीचे उतरा।

पाँच-सात दिनके बाद एक दिन पतिदेवने मेरी

बड़ाई करते हुए कहा कि माताजी, उसकी सी बहू आपको सात जन्ममें भी नहीं मिलनेकी, यद्यपि हम लोगोंकी ओरसे उसपर कम अत्याचार नहीं हुए, पर उस भले बापकी बेटीने आपके विरुद्ध एक शब्द भी बिना कहे उन सबको सह लिया, यहाँतक कि अन्तमें तिल-तिल छीजकर मृत्युतकको कण्ठसे लगानेको तैयार हो गयी। यदि आप उसे इस घरमें एक बार स्थान देनेकी कृपा करें तो मेरा विश्वास है कि वह अपनी सेवाओंसे आपको अवश्य प्रसन्न कर लेगी। माताने बेटेकी बातोंपर विचार किया। अन्तमें अपनी स्थितिको भी सोच-समझकर मुझे बुलाना ही तय हुआ।

मैंने जाते ही घरका सारा काम अपने हाथमें ले लिया। सासकी बिना मर्ज़ीके एक तिनका भी इधर-उधर नहीं करती; बड़े प्रेमसे रसोई बनाती, सबको खिलाती, घरके सब काम करती, बादमें सासजीके पैर दबाती और उन्हें अपनी मीठी-मीठी बातोंसे अपनी ओर आकर्षित करती; इस तरह शीघ्र ही वे मेरे वशमें आ गयीं। अब तो उन्होंने सारा काम मेरे ऊपर ही डाल दिया है, रात-दिन भगवानका नाम लेती हैं और आये-गयेके सामने खुले मुँह मेरी प्रशंसा करती हैं।

मैंने छोटी बहूको बुलानेके लिये भी उन्हें राजीकर लिया था, पर उसके पिता इतने जिद्दी हैं कि उन्होंने उसे न भेजा, यहाँतक कि मैं खुद वहाँ गयी, उन्होंने अपनी लड़कीकी तरह मेरा आदर-सत्कार किया, पर छोटी बहूको भेजनेके लिये किसी हालतमें भी वे राजी नहीं हुए। अन्तमें मैंने सासजीसे अनुनय-विनय करके उन्हें इस बातपर राजी कर लिया कि सालमें एक महीनेके लिये वे वहाँ जाकर छोटी बहूके पास रह आया करें। ऐसा ही हुआ भी।

आज मेरे और छोटी बहू दोनोंके एक-एक लड़का है, जो दोनों ही अपनी बूढ़ी दादीकी गोदमें ऊधम मचाया करते हैं।

## छठी बैठक

सभा-स्थानमें बड़े उत्साहके साथ मण्डलका छठा अधिवेशन आरम्भ हुआ।

सभानेत्रीजीके स्व-आसन ग्रहण करनेके बाद सभाका कार्य आरम्भ हुआ।

सबसे पहले मन्त्री महोदयाने गत अधिवेशनका कार्य-विवरण पढ़ सुनाया, जो सर्वसम्मतिसे स्वीकृत हुआ।

इसके बाद श्रीमती इन्दिरा देवीसे सभानेत्रीजीने अपनी 'आप बीती' सुनानेका अनुरोध किया।

सभानेत्रीजीकी आज्ञा शिरोधार्य करके श्रीमती इन्दिरा देवीने अपनी "आप बीती" इस तरह कहनी आरम्भ की।

प्यारी बहिनो ! बालकपनसे ही मैं अपने पिताकी बहुत प्यारकी वस्तु थी, मुझे पिताजी इतना सिर चढ़ाये रहते थे कि अक्सर माताजी उनके इस तरहके प्यारका प्रतिवाद किया करती थीं, कभी-कभी तो वे नाराजतक हो जाती थीं; पर पिताजी हँसकर टाल देते थे। माताजी-को क्रोध तो हद दर्जेका आता था पर पिताजीके जरा नरम होकर हँसते रहनेसे उनकी बातोंका उत्तर न दे करके अपनी कमजोरी दिखाते रहनेसे—इस तरहके वाद-विवादका अन्त मधुर ही बना रह जाता था।

पिताजीकी आय साधारण थी, परन्तु अपने साथि-योंमें, अपने मित्रोंमें वे अपनेको बराबर ऊँचा दिखाकर रहना चाहते थे; इसलिये जो कुछ कमाते थे, वह सब महीना पूरा होते-होते खर्च कर डालते थे। माताजीका स्वभाव विशेष सन्तोषी होनेके कारण पैसेको लेकर हमारे घरमें कभी कलह-विवादका पदार्पण नहीं हुआ।

मेरे पढ़ाने-लिखानेपर पिताजीका पूरा ध्यान रहनेपर भी मैं उधर बहुत ही कम आकर्षित होती थी, मेरा अधि-कांश समय अपने बनाव-शृङ्गारमें ही बीतता था और बीतता था इस बातका ध्यान रखनेमें कि मेरे बनाव-शृङ्गारको देखकर लोग क्या सोचते हैं, उनकी मेरे विषयमें क्या राय है ?

पिताजी मुझे अंगरेजी ढंगकी पोशाकमें ही देखना अधिक पसन्द करते थे। मैं जब बहुत छोटी थी तब तो छोटी-सी एक निकर और उसपर एक झालरदार फ्राक, मेमोंकी तरहके फ्रेञ्चकट बाल तो उन्हें बहुत ही भाते थे। जब थोड़ी बड़ी हुई, तो ऊँची एड़ीके जूते और हलके गुलाबी रंगके मोजे और बढ़ा दिये गये। साथ ही एक मिशन स्कूलमें भेजी जाने लगी। घरपर भी एक मेम साहिबा पढ़ानेके लिये आने लगीं।

मैं पहले ही बता चुकी हूं कि पिताजीकी आय बहुत अधिक नहीं थी, तिसपर अब यह नया खर्च और बढ़ जानेसे उन्हें और भी आर्थिक कठिनाई रहने लगी, माताजीको यह सब बहुत अच्छा नहीं लगता था, खासकर जो मेम साहिबा मुझे पढ़ाने आती थीं उनका ध्यान जितना मुझे अंगरेजी चाल-ढाल सिखानेकी ओर रहता था उतना पढ़ाईकी तरफ न देखकर माताजीको बहुत अखरता था; पर पिताजी दो-चार बात इधर-उधरकी कहकर उनको समझा-बुझा देते थे। मुझे भी पहले-पहल यह सब अच्छा नहीं लगता था, पर स्कूलमें अधिकांश लड़कियां इसी ढंगसे रहतीं थीं; इसलिये धीरे-धीरे मेरी रुचि भी उसी तरहकी हो गयी।

जब मैं तेरह-चौदह सालकी हुई तब मुझे अंगरेजीमें बातचीत करनी आ गयी थी, रंग-ढंग भी एंग्लो इण्डियन गर्ल्स या यों कहिये ब्राह्म समाजी छोकरियोंकी तरह हो गया था। यद्यपि घरमें अबतक भी वही पुराना हिसाब चल रहा था। माताजीका रहन-सहन वही देशी ढंगका था, खान-पान भी शुद्ध हिन्दू घरोंकी तरहका ही था। हाँ, पिताजी चाय, बिस्कुट, टोस्ट, सोडा, लेमनेट किसीसे परहेज नहीं करते। मैं भी इन सब चीजोंके खाने-पीनेकी आदी बनती जा रही थी। बीच-बीचमें माताजी कुछ कह सुन जाती थीं पर हमलोगोंपर उसका कुछ भी असर नहीं पड़ता था।

इधर मैंने पन्द्रहवें सालमें पैर रखा उधर माताजीने खाना-पीना छोड़कर मेरे विवाहके लिये पितासे कहा-सुनी आरम्भ कर दी, मेरा दिल भी इधर-उधर भटकने लगा—साथी खोजने लगा; पिताजी सुधारक विचारोंके थे उनके यहाँ उनके मित्र लोग बराबर आया-जाया करते थे, वे भी अक्सर अपने मित्रोंके यहाँ आते जाते थे, ऐसे जलसोंमें माताजीके साथ मैं भी बराबर जाया करती थी।

मेरे विवाहकी बात चली, पिताजीने एक सम्बन्ध ठीक किया था। माताजीको भी लड़का पसन्द आ गया

घर भी अच्छा था, हम लोगोंसे तो बहुत अच्छा था। हम दोनोंको मिलने-जुलनेकी स्वतन्त्रता दे दी गयी, दोनोंका मन मिल गया, जब विवाह होना ठीक हो ही गया था तब बाधा किस बातकी थी।

एक दिन अचानक माताजीसे पिताजीने मेरे विवाह-सम्बन्ध विच्छेदकी बात कही। माताजी यह सुनकर बहुत घबराईं। पिताजीको नाना प्रकारसे समझाया पर उनका स्वभाव जिद्दी था, जो कह दिया सो कह दिया। हम दोनोंका मिलना-जुलना बन्द कर दिया गया, मनमें बड़ी बेचैनी रहने लगी, मैं ऐसा अवसर ढूँढ़ने लगी कि किसी तरह हम दोनों मिल सकें। बहानाबाजी करके, जैसे-तैसे कभी-कभी मुलाकात हो जाती थी; दोनों रोते थे कलपते थे, पर कुछ उपाय नहीं था, इसलिये घरसे निकल भागनेतककी बात मनमें उठ खड़ी हुई थी किन्तु इस विषयमें दोनोंका एकमत नहीं हो पाया, इसीलिये यह अनर्थ नहीं हुआ।

इस सम्बन्ध-विच्छेदका कारण यह था कि पिताजी-के मित्रोंमेंसे एकने उन्हें एक अच्छा काम इस शर्तपर देना चाहा कि वे मेरा सम्बन्ध उनके एक परिचित मित्रके पुत्रके साथ कर दें। पिताजीको तो धनकी आवश्यकता

थी ही, उन्होंने लड़केको देखकर इसे स्वीकार कर लिया। वास्तवमें पहले घरसे यह घर अच्छा भी था और लड़का भी योग्य था। पर मेरी दृष्टि इससे भिन्न थी। यह तो मन मिलनेकी बात थी। माता-पिताकी आज्ञासे ही जब एकको मन अर्पित कर चुकी; तब अब दूसरेके लिये एक और मन कहाँसे लाती? घरमें बहुत अशान्ति मची, माताजी भी मेरी ही बातका समर्थन करती थीं, पर किया करें, न उनकी चली और न मेरी। पहले सम्बन्ध-की घोषणा की नहीं गयी थी, किन्तु परिचितोंको यही विश्वास था कि मेरा विवाह वहीं होगा। पिताजीने इस नये सम्बन्धकी घोषणा कर दी।

हम दोनोंका मिलना-जुलना तो पहले ही बन्द कर दिया गया था, अब एक तरहसे मैं कैद भी कर दी गयी। न वह मेरे पास आ सकता था और न मैं ही कहीं जा सकती थी, मन मारे दिनभर घरमें पड़ी रहती थी, मैं सोचती थी, तो पहले मुझे क्यों इतनी स्वतन्त्रता दी गयी थी जिससे मैं सबसे हिल-मिल सकती थी और क्यों अब इस तरह सतायी जा रही हूं? क्या यही सुधारका असली रूप है? क्या इसी तरहकी दुरंगी चालोंसे देशका उद्धार होगा? नहीं, इससे तो वह पुरानी रीति ही बहुत

अच्छी है जिसमें हम अपनेको इस विषयमें सर्वदा परा-धीन समझकर, हमारे माता-पिता जो निश्चय कर देते हैं उसीमें हम सन्तोष मान लेती हैं।

इस नयी रीतिमें हमारा मन तो इतना स्वतन्त्र बना दिया जाता है मानो हमें सब तरहसे अपने विषयमें निर्णय करनेका पूर्ण अधिकार है, पर व्यवहार वही पुरानाका पुराना बना रहता है। वे ही काम करने पड़ते है जो घर-वाले निश्चित करते हैं।

प्यारी बहिनो! सुधारके नामपर होनेवाले इन अत्या-चारोंको रोकनेका हम लोगोंको पूरा प्रयत्न करना चाहिये नहीं तो आगे चलकर योरोप आदि अन्य देशोंकी तरह हमारे यहाँ भी तलाक और विच्छेदके नित्य नये काण्ड होते दिखाई देने लगेंगे।

जो भी हो, इस विवाहमें न मेरा मत लिया गया और न मेरे विरोधकी ही परवाह की गयी, कुछ इधर-उधर करके सुधारके नामपर बड़े समारोहके साथ—डंकेकी चोट मेरा पुनर्विवाह कर दिया गया—मैं इसे पुनर्विवाह इसलिये कहती हूं कि भगवानके सामने मैं एकबार पहले विवाह कर चुकी थी—उसपर अच्छे-अच्छे लोगोंकी स्वीकृतिकी छाप लगा दी गयी। बड़े-बड़े अक्षरोंमें दैनिक और साम-

यिक पत्रोंमें उसका विवरण छपा दिया गया—पर जितने लोग उस समय वहाँ उपस्थित थे सब अन्धे थे। मैं उन्हें अन्धा इसलिये कहती हूं कि हमारे इस विवाहके समय हम दोनोंका क्या रुख था इसकी ओर किसीने भी ध्यान नहीं दिया।

जो भी हो विवाह हो गया, विदा हो गयी। इस नये घरमें पहले घरसे प्रायः सभी बातोंमें भिन्नता थी; जिनमें और सब तो अखरनेके बदले प्रिय ही लगीं, पिताके घरमें तो खादीके नाम पर रेशमी वस्त्र पहिननेको मिलते थे, पर यहाँ आकर मोटा खद्दर धारण करना पड़ा, जिससे पहले-पहल बहुत कष्ट मालूम हुआ; पर पतिदेवकी चतुराईसे जैसे पहलेका जमा हुआ मनका मैल बहुत शीघ्र साफ हो गया वैसे ही रेशमी वस्त्रोंकी आदत भी कुछ ही दिनोंमें छूट गयी।

अब मेरे दिन बहुत आनन्दसे बीत रहे हैं; यदि हम-लोग पहलेसे ही दूरकी बातोंपर कुछ सोच विचार कर लिया करें तो मेरी जैसी अबोध बालिकाओंको इस तरह-के संकटोंका सामना न करना पड़े।

---

# सातवीं बैठक

मण्डलकी सातवीं बैठक आरम्भ हो गयी। सभा स्थान सदस्याओंसे खचाखच भरा हुआ था। सभा-नेत्रीजीके आसन ग्रहण करनेके बाद सभाका कार्य सभा-नेत्रीजी द्वारा आरम्भ हुआ।

उन्होंने श्रीमती यशोदा देवीसे अपनी "आप बीती" सुनानेका अनुरोध किया गया।

श्रीमती यशोदादेवीने अपनी आप बीती सुनाते हुए कहा,--प्यारी बहिनों! मैं गरीबकी सन्तान हूं, मेरे माता-पिता गरीब थे, यहांतक कि पिताजी हमलोगोंको इतनी गिरी हुई दशामें छोड़कर स्वर्ग सिधारे थे कि उनकी मृत्युके बाद माताजीको रास्तेमें खड़ी होकर भीख मांगने तककी नौबत आ गयी थी।

यह बात नहीं कि हम लोगोंके पास कुछ भी नहीं था। करीब तीन-चार बीघा जमीन थी, अपना निजका घर था, परन्तु पिताजीकी मृत्युके समय बिरादरीके लोगोंने माताजीके लाख चिल्लाते रहनेपर भी पिताजीके द्वादशेके बिरादरी भोजमें घर जमीन दोनों बन्धक रखाकर कर्ज लेनेके लिये वाध्य किया। माताजी तो कर्ज लेनेके लिये एक बारगी ही राजी नहीं होती थीं पर पंचों-ने साफ शब्दोंमें उन्हें धमकी दी कि यदि तुम बिरादरी-को नहीं खिलाओगी तो तुम अकेली घर समझी जाओगी जिसके परिणाम स्वरूप तुम्हारी कन्याको कोई भी विवा-हनेको तैयार न होगा। उनकी क्रूर धमकीने माताजीको अपने निश्चयसे डिगा दिया। घर, जमीन सब बन्धक रखकर बिरादरीको मिठाई पूरी खिलाकर सन्तुष्ठ किया गया। दो चार दिन खूब वाह-वाह हुई, पर कर्ज देनेवाला कब माननेवाला था। उसने पांच-चार महीनेके बाद ही जोरोंका तकाजा आरम्भ कर दिया। माताजीके पास कर्ज अदा करनेके लिये क्या रखा था, उन्हीं पञ्चोंने बीचमें पड़कर जमीन और घर बिक्रीकरा कर्ज अदा करा दिया। जमीन तो उसी दिन दखल कर ली गयी और घर खाली करनेकी दो महीनेकी मोहलत मिली। इन दो महीनोंमें

माताजीके पास जो दो-चार बरतन, भांड़े बचे थे वे भी मोदीके घर पहुंच गये, सारांश यह कि एक दिन भोरमें खाली हाथों हम दोनों मा-बेटीको रास्तेमें आकर खड़ा हो जाना पड़ा।

एक पड़ोसीने दया करके हम लोगोंको दो-एक दिन अपने यहाँ रखनेका साहस किया पर वह भी हमारी ही तरह गरीब था, हम दो प्राणियोंके लिये कहाँसे अन्न जुटाता, अन्तमें वह सहारा भी टूट गया। आज यहाँ, कल वहाँ; इसी तरह गांवमें ही भीख मांगकर दस पन्द्रह दिन बिताये, पर गांव छोटासा था, इस तरह भीखपर कितने दिन निर्वाह चलेगा यह बात सोचकर माताजीने शहरमें चलनेका विचार कर लिया।

अब मैं बारह सालकी हो चुकी थी, न जाने परमात्माने हम जैसे गरीबोंको इतना रूप क्यों दे दिया? मैं तो बालिका थी पर माताजी सत्ताइस अठाइस सालकी नवयुवती थीं; बदनपर अलंकारोंकी तो कौन कहे, पूरे वस्त्र भी नहीं थे, एक फटी पुरानी धोती और उसी तरहकी कई पैवंद लगी हुई एक चादर और हाथमें एक चिथड़ेमें बंधा हुआ लोटा। इस हालतमें भी राखमें दबी हुयी आगकी तरह उनका रूप चमक रहा था। इसी

दयनीय दशामें हम लोग दो दिन और दो रात अनवरत पैदल चलके शहरमें पहुंची, रास्तेमें किसीने दया करके कुछ दे दिया तो खा लिया; नहीं तो यों ही रह जाना पड़ता था।

गांवमें तो हम लोगोंसे कोई बात भी करनेवाला नहीं था पर शहरमें पांव रखते ही लोगोंकी भीड़ने हम दोनों-को चारों ओरसे घेर लिया, इस भीड़का कारण हमारी गरीबी नहीं था, प्रत्युत हमारी सुन्दरता थी, जो न तो देखनेवालोंके ही किसी कामकी चीज थी और न उसके मालिकोंका ही उससे पेट भरता था पर संसार न जाने इस सफेद और काले रङ्गकी चमड़ीमें इतना अन्तर क्यों समझता है ? इस आवरणके भीतर तो सभी जीवधारि-योंमें हाड़ और मांसका एकसा ही जाल बुना हुआ है।

उस भीड़मेंसे एक खद्दरधारी सज्जन माताजीके पास आकर पूछने लगे। आप कहां जाना चाहती हैं ? क्या आप रास्ता भूल गयी हैं ? अथवा आपके साथके लोग कहीं छूट गये हैं ? माताजीने तुरन्त उत्तर दिया; नहीं ! न तो हम रास्ता भूली हैं और न कोई हमारे साथमें ही था, हम तो अनाथ हैं, दो रोटियोंकी तलाशमें यहाँ आयी हैं।

उक्त खद्दरधारी सज्जनने कहा बहिन; यहाँ एक

विधवा-अनाथ आश्रम है उसमें संसारकी सतायी हुई बहुत सी बहिनें रहती है, यदि आप वहां रहना चाहें तो मैं आपको वहाँ पहुंचा सकता हूं।

माताजीने उन्हें भला आदमी समझकर वहां जाना स्वीकार कर लिया, पर उनसे यह बात स्पष्ट कह दी कि मैं किसी सवारीपर चढ़कर वहां नहीं जाऊंगी; यदि आप पैदल चलनेका कष्ट स्वीकार करें तो मैं वहां चल सकती हूं।

उन्होंने पैदल ही वहां ले चलनेकी हां भर ली, स्थान भी बहुत दूर नहीं था, यही कोई आधा माइल होगा। हम लोग थोड़ी देरमें ही वहाँ जा पहुंचे।

आश्रमके प्रबन्धकर्ता महाशयने हम लोगोंके नाम पते, उमर आदि सब अपने रजिस्टरमें चढ़ा लिये साथ ही उन खद्दरधारी सज्जनका भी नाम-पता नोट कर लिया। इसके बाद अपने एक कर्मचारीके साथ हमें भीतर पहुंचा दिया गया।

भीतरके हिस्सेमें काफी जगह थी, मकान दो तल्ला था, आगे खुली हुई जगह थी, जिसके एक ओर रसोई घर था। उस समय बहुतसी महिलाएं वहां काममें जुटी हुई थीं जो हम लोगोंको भीतर आते देखकर प्रायः

सारोंकी सारी काम छोड़कर वहां आ जमा हुईं, कुछ ऊपरसे और कुछ इधर-उधरसे भी आ गयीं। इस तरह प्रायः पचासके लगभग छोटी-बड़ी स्त्रियां वहां जमा हो गयीं थीं, उनमें कुछ तो कुंवारी कुछ सधवा और बाकी-की विधवा थीं। रूपरङ्गमें काली और गोरी, बदनके गठनमें दुबली और मोटी, ऊंचाईमें नाटी और लम्बी सभी तरहकी स्त्रियां वहाँ थीं।

हम लोगोंको ऊपरके तल्लेमें पहुंचा दिया गया ऊपर सिर्फ एक ही बड़ा हाल था, उसीमें अलग-अलग चौकियां डालकर प्रायः बीस बाईस महिलाओंके रहनेकी जगह बनी हुई थी। उन्हींमेंसे एक ओरकी दो चौकियां हम लोगोंको बता दी गयीं। हमारे साथ आनेवाले कर्मचारीने पूछा—यहां एक ही चौका है जिसमें छुआछूतका परहेज नहीं रहता। यदि आपलोग अलग बनाकर खाना चाहें तो कुछ दिनके लिये वैसा प्रबन्ध भी किया जा सकता है।

माताजीने अलग रसोई बनानेकी बात ही ठीक समझी। हम लोगोंके नहा-धो लेनेके बाद उन्हीं कोठरि-योंमेंसे एक कोठरी खोल दी गयी जो सबकी सब बन्द थीं। वर्तन तथा रसोईका सामान दे दिया गया। हम

दोनों मां बेटीने मिलकर रोटियां बनाई और खा-पीकर काम खतम किया !

उधर बड़े रसोई घरका काम भी खतम हो चुका था; सारी महिलाएं नीचेके आङ्गनमें आकर जमा हो गयीं, वहाँ नाना प्रकारकी आलोचना होने लगी, उन आलोचनाओंमें उस दिन हमारा विषय ही प्रधान था, कोई हमारी गरीबीपर सहानुभूति दिखा रही थी तो कोई हमारे रूपकी प्रशंसा कर रही थी, कोई यहाँके जीवनकी आलोचना कर रही थी तो कोई निष्ठुर समाजको कोस रही थी, इसी तरह नाना प्रकारकी चर्चा चल रही थी।

दिनके बारह बजे एक घण्टा बजा, जिसको सुनकर सबकी सब स्त्रियां रहनेवाले घरके पिछवाड़ेकी ओर चली गयीं, हमलोग भी उनके साथ हो लीं। वहां तीन चार तरहका काम करनेका प्रबन्ध था। उन्हीं महिलाओंमेंसे एक एकने तो अध्यापिकाओंकी तरह शिक्षिकाका आसन ग्रहण किया और बाकी सब सीखने या काम करनेके लिये तैयार दिखाई देने लगीं।

वहाँ सिलाईका, गंजी, मोजा बुननेका, सूई शिलपका तथा कातने बुननेका काम हो रहा था। वे सारीकी सारी महिलाएं इन्हीं कामोंमें लग गयीं। सब बड़े मनो-

योग पूर्वक अपना अपना काम कर रहीं थीं। यदि किसी से कुछ भूल होती तो वे शिक्षिकाएं उसे सुधार लेती थीं।

जब सब काम नियमपूर्वक चलने लगा तब उन शिक्षिकाओंमेंसे एकने माताजीसे कहा, आज आपको कोई काम नहीं दिया जा सकेगा। सन्ध्या समय मन्त्री महोदय जब अपनी पत्नीके साथ यहां आवेंगे तभी आपके विषयमें सारी बातें निश्चित होंगी।

लगातार पांच घण्टेतक काम होता रहा। ठीक पांच बजे फिर उसी तरह घण्टा बजा, सबने हंसते-हंसते अपने कामोंका हिसाब अपनी अध्यापिकाओंको समझा दिया और वहांसे छुट्टी पा गयीं।

उसी समय उनमेंसे कुछ महिलाएं एक वृद्धा अध्यापिकाके सामने आकर कहने लगीं, माताजी आज इस समयकी रसोई बनानेका भार हमलोगों पर है, आपकी आज्ञा हो तो रसोई घरमें जांय। उन्होंने हंसते हुए उनको वहां जानेकी आज्ञा दे दी। इसके बाद एक दूसरा दल आया, उसने तरकारी तथा पौधोंके सींचनेकी आज्ञा चाही, उन्हें भी आज्ञा मिल गयी, तीसरे दलने चिराग बत्ती तथा झाड़ बुहारके लिये आज्ञा चाही, उन्हें भी स्वीकृति मिल गयी। शेष चौथे दलने आश्रमके बच्चोंको दूध

पिलानेकी आज्ञा मांगी, उन्हें भी आज्ञा मिल गयी। इस तरह वहांकी सबकी सब महिलाएं अपने-अपने काममें जा लगीं। वहां सिर्फ तीन मनुष्य रह गये; दो हम और एक वे वृद्धा।

हम दोनोंको साथ लेकर शिल्प घरके .बगलवाले कमरेमें वृद्धा आयीं, जहां एक गांधी टोपीधारी युवक और मोटी खादीकी साड़ी पहने एक युवती बैठी थी। उन दोनोंने हमारे साथकी वृद्धा महिलाको प्रणाम करते हुए उनके चरण छूए। वे आशीर्वाद देकर एक ओर बैठ गयीं और हमें भी अपने पासमें ही बिठा लिया।

युवकने हमारी ओर इशारा करते हुए पूछा, माताजी आज जो दो बहिनें आयीं है वे क्या यहीं है? माताजीने सर हिलाकर उनका अनुमान ठीक बताया।

उन्होंने दो-चार प्रश्न करके हमारी जात-पांत तथा अवस्था जान ली। यह भी जान लिया कि हम यहां निश्चिन्ततासे रहना चाहती हैं।

उन्होंने कहा कि यहां खानपानमें पूरी शुद्धताका बर्ताव रहता है, भोजन तो निरामिष बनता ही है बनाने-वाली भी ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य जातिकी महिलाएं रहती हैं। यद्यपि शूद्र वर्णकी महिलाओंसे रसोईघरका काम

नहीं लिया जाता, पर रहना सहना सबको एक साथ ही पड़ता है, उस तरहकी छुआ-छूतको यहाँ महत्व नहीं दिया जाता। यदि इसमें आप साथ रह सकें तो आपको यहाँ स्थान देनेमें कोई आपत्ति नहीं है। यदि आप ऐसा न कर सकें तो एक महीने तक आपको यहां अलग रसोई घर देकर रखा जा सकेगा। इसके बाद आपको दूसरा प्रबन्ध करना होगा।

माताजीने कहा, बाबूजी, हम तो इस समय बिल्कुल ही अनाथ हैं, न तो हमारे कोई घर-द्वार है और न सगा-सम्बन्धी ही, फिर यहाँका प्रबन्ध भी बुरा नहीं है जिससे किसीको कुछ कहनेकी गुञ्जाइश रहे। हमलोग आपकी छत्र-छायामें सहर्ष रहनेके लिये तैयार हैं।

आश्रमके मैनेजरको बुलाया गया। हम लोगोंके नाम कच्चे रजिस्टरसे उठाकर स्थायी रजिस्टरपर चढ़ा लिये गये और अपने स्थानपर जानेकी आज्ञा मिल गयी।

हम लोग भी अन्य अपनी बहिनोंकी तरह दौड़-दौड़-कर अपने हिस्सेका काम करने लगीं, बड़ा आनन्द रहता था, न वहाँ ईर्षा थी; न द्वेष, सबका एक-सा मान, एक-सी मर्यादा; एक-सा भोजन, एक-सा काम, समयपर सोना, न वहां अकेला कोई पुरुष आ सकता था न हमें

ही किसी पुरुषसे मिलनेकी आवश्यकता थी। सारांश यह कि हमारे दिन बड़ी ही शान्तिके साथ बीत रहे थे।

जिन वृद्धाका मैं ऊपर वर्णन कर आयी हूं वे हम लोगोंकी तरह अनाथ नहीं थीं। पहले दिन जो युवक और युवती आये थे वे इनके पुत्र और पुत्रबधू थे, इनके लाखों-करोड़ोंकी सम्पत्ति है तो भी वे गरीबोंके दुःख दूर करनेके लिये इस तरहकी तपस्या कर रही हैं। इनके त्यागका ही यह चमत्कार है।

हम लोगोंको वहाँ रहते पूरे दो साल हो गये। शिल्पशालामें जो काम हम सब करती थीं उसकी आधी आमदनी हमें मिल जाती थीं, उससे हम सबके पास कुछ-न-कुछ रुपये अपने भी रहते थे। उस समय मैं पूरे चौदह सालकी होकर पन्द्रहवेमें पांव रख चुकी थी, जैसे-जैसे मेरी अवस्था बढ़ती गयी मेरी सुन्दरता भी बढ़ रही थी। सबके मुँहसे अपनी सुन्दरताका बखान सुनकर मुझे बहुत ही आनन्द मालूम होता था।

एक दिन माताजीने आकर मुझसे कहा, कल तुम्हारा विवाह होगा। मैं आश्चर्यमें पड़ गयी, न लड़का, न सगाई, यह कैसा विवाह, पर शीघ्र ही उन वृद्धा देवीजीसे मुझे मालूम हो गया कि—जो सज्जन उन्हें इस

आश्रममें भरती करा गये थे, वे बहुत बड़े आदमी हैं, वे उनके पुत्रके मित्र भी हैं। इस आश्रममें उनका भी हाथ है। ऐसा ही समझना चाहिये कि दोनों मित्र इसकी दो आँखें हैं उन्हींके पुत्रके साथ मेरा विवाह होगा।

बहिनो! मैं क्या कहूं? कहाँ मैं एक अनाथ गरीब बालिका और कहां वे लक्षाधीश! परन्तु भगवानकी रचनामें कोई भी अन्तर नहीं डाल सकता, यदि हमलोग उस दिन किसी दुष्टके हाथ पड़ जातीं तो न जाने हमारा क्या हाल होता, पर ईश्वरकी कृपासे आज हमें यह दिन देखनेको मिल रहा है।

सन्ध्या समय वे सब आये, मेरे भावी सास और श्वसुर भी साथ थे और साथ थे एक बीस वर्षके गौर वर्णके युवक जो दबी निगाहसे मुझे देख रहे थे और मैं,मैं डरती-शर्माती जरा-सी ऊंची आँखें करके उनको देख लेती थी।

मुझे पहले उन्होंने नहीं देखा था सो नहीं, पर यह मुझे बादमें मालूम हुआ, एक दिन वे अपनी मांके साथ आकर मुझे पौधोंमें पानी देते हुए देखकर शकुन्तलाकी पदवी दे गये थे।

दूसरे दिन बहुत ही सादगीसे हमारा विवाह कृत्य

सम्पन्न हो गया, मैं माताजीकी गोदमें सिर देकर खूब रोयी, उन्होंने भी प्रेमके दो चार बून्द आँसू बहाये। इसके बाद—इसके बाद तो मेरे लिये सारा संसार ही बदल गया। मैं बहुत बड़े आदमीकी पुत्र बधू हूँ, सैकड़ों दास दासी घरमें हैं तो भी मैं सास, ससुर और अपने प्राणपतिके लिये निजमें ही भोजन तैयार करती हूं, और अपने हाथसे उन सबको खिलाती हूं और आप जानती हैं मैं क्या करती हूं, अपने मकानके सामनेके बागमें छोटी-सी कलसी बगलमें दबाकर छोटे-छोटे पौधोंका सिंचन करती हूं, जिसे पतिदेव किसी न किसी लताकुञ्जकी ओटमें छिप कर अवश्य देख लेते हैं।

बहिनो! अब हमारे उस आश्रमका सारा भार माताजीपर ही आ पड़ा है, क्योंकि उन वृद्धा अन्नपूर्णाका अब स्वर्गवास हो चुका है। हम पति पत्नी भी अक्सर वहां जाया करते हैं।

## आठवीं बैठक

आज मण्डलकी आठवीं बैठक है। नियमानुसार गत बारका कार्य विवरण पढ़कर सुनाया गया और स्वीकृत हुआ।

इसके बाद सभानेत्रीजीने श्रीमती सुखदेवीजीसे अपनी "आप बीती" सुनानेका अनुरोध किया, जिसे श्रीमतीजीने सहर्ष स्वीकार करके, इस प्रकार सुनाना आरम्भ किया। प्यारी बहिनो! मेरी राम कहानी क्या है? वह तो दुःख और यातनाओंकी एक प्रदर्शनी है। मेरा बालकपन कैसे बीता; मैं एक गरीब घरकी लड़की हूं या धनवानकी, मेरे घरके लोग अच्छे स्वभावके थे या रूखेके, इन बातोंको कहकर मैं आप बहिनोंका समय न लूंगी,

मैं तो अपनी ससुरालमें आने—अपने पतिके सम्पर्कमें आनेके बादकी अपनी बीती सुनाऊंगी।

मेरी इस आप बीतीमें आपको कुछ ऐसी भी बात मालूम होगी जो मेरी जैसी अभागी अबलाओंके लिये ही नहीं, उनके पति कहलानेवाले अधम जीवोंके तथा उनको पशुतुल्य बना देनेवाले उनके मित्रों (?) के लिये भी बहुत ही विचारणीय बात है।

दुर्भाग्यसे मेरे ससुराल आनेके कुछ दिनों बाद ही मेरे सास और श्वसुर दोनोंका स्वर्गवास हो गया। हम पति पत्नीको छोड़कर नौकर चाकरोंके सिवा घरमें अपना कहलानेवाला और कोई नहीं था। श्वसुरजीका कारबार अच्छा था, जमीदारी भी काफी थी। उनका स्वभाव कृपण था, इसलिये कारबार तथा जमीदारी बढ़ानेका विचार न रहनेके कारण बाकी सारीकी सारी पूंजी सरकारी कागजोंमें लगी हुई थी, ब्याजके द्वारा जो आमदनी होती थी वह भी हर साल उन्हीं कागजोंमें लगा दी जाती थी, घरका खर्च जमीदारी तथा कारबारकी आयसे चला लिया जाता था।

घरका खर्च ही क्या था; साधारणसे मकानमें, दो एक नौकरोंको लेकर बहुत ही मामूली ढंगसे रहते थे,

हमलोगोंकी आद्त भी उन्हींके रहन-सहनके अनुकूल बन गयी थी फिर मेरे मायकेमें मैं किसी प्रकारसे भी क्यों न रह चुकी थी।

हां, तो सास और श्वसुरजीका स्वर्गवास हो जानेके बाद वह सारी सम्पत्ति पतिदेवके हाथोंमें चली आयी। अबतक उनकी युवा अवस्थाके सारे अरमान उनके मनमें ही दबे पड़े थे। क्योंकि श्वसुरजीके हाथसे साधारण खर्च-बर्चके पैसोंको छोड़कर पूरे रुपयेका खर्च करनेका अवसर शायद ही कभी मिला हो। वे बड़े आदमीके लड़के थे, अपनी हैसियतके अन्य लोगोंसे बराबर मिलने-जुलनेका काम पड़ता रहता था। उनको बढ़िया मोटरें, भड़कीले वस्त्र, बाग बगीचोंकी सैर तथा और नाना प्रकारके आमोद-प्रमोद्के कामोंको देख-देखकर उनका मन भी वैसा ही करनेको ललचाता था, पर अपने पिताजीके भयसे वह मुंहसे कुछ कह नहीं सकते थे। हाथमें पैसे आते ही उन्होंने बहुत दिनोंकी रुकी हुई मनकी हवस खूब जोरोंके साथ निकालनी आरम्भ की। उस पहाड़ी नदीकी तरह जो सामनेकी एक बड़ी चट्टान-की बाधा पाकर आगे बढ़नेसे रुक जाती है, और उससे धक्के खाकर वहीं अपनी सीमाके भीतर ही ऊंची उठती

रहती है, परन्तु जैसे-जैसे वह ऊंची उठती है जो कुछ समय बाद अपनी उसी एकत्रित शक्तिके जोरसे अपने रास्तेकी उस बड़ी सिलाको ढकेलकर अपना रास्ता बना लेती है और पहलेसे कई गुना अधिक वेगसे आगे बढ़ चलती है—ठीक उसी तरह पतिदेवने भी स्वतन्त्र होते ही दोनों हाथोंसे धन लुटाना आरम्भ कर दिया।

यह बात ठीक है कि श्वसुरजीका उस तरहका कठिन प्रतिबन्ध तो उचित नहीं था परन्तु अब इस तरहसे आंखें मूंदकर पतिदेवका धन लुटाना तो उससे भी अधिक अनुचित हो रहा था।

पतिदेव मुझे बहुत मानते थे, हमारा पारस्परिक प्रेम भी बहुत अधिक था, श्वसुरजीकी नीति हम दोनोंको ही अखरती थी, प्रायः हमलोग उसपर आलोचना प्रत्या-लोचना किया करते थे। परन्तु इस समय इतनी अतुल सम्पत्तिके अधिकारी बन जानेसे वे मुझसे किसी तरहकी राय-सलाह लिये बिना ही अपने मनमाने ढंगसे खर्च-बच करने लगे। आरम्भमें तो मैंने इस विषयपर विशेष ध्यान नहीं दिया पर जब देखा कि अब बिना बाधा दिये काम नहीं चलेगा तब बीच-बीचमें कुछ रोक-टोक करने लगी।

पतिदेवके हाथमें धन आते ही नाना प्रकारके यार-

दोस्त आ जुटे। कोई संगीतका रसज्ञ था, तो कोई बाग-बगीचोंका विशेषज्ञ था, कोई मकान घर बनानेकी विद्याका जानकार था, तो कोई घरकी सजावटके सामानोंको चुननेमें मर्मज्ञ था। सारांश यह कि इस तरहके दर्जनों उस्ताद हमारे यहां इकट्ठे होने लगे।

एक ओर बड़ा-सा मकान तैयार हो रहा है तो दूसरी ओर एक सुन्दर बाग बनाया जा रहा है। एक ओर बढ़िया-बढ़िया कई मोटरें खरीदी गयीं तो दूसरी ओर नाना जातिके घोड़े और टट्टू खरीदे गये थे। कहीं अंग्रेजी कम्पनियोंको सजावटके सामानोंका आर्डर दिया जा रहा था तो कहीं भांति-भांतिकी पोशाकें तैयार करायी जा रही थीं, सारांश यह है कि दोनों हाथोंसे रुपये लुटाये जा रहे थे।

न जाने क्या विचार कर श्वसुरजीने सारे कम्पनीके कागज मेरे नाम चढ़ाकर मुझे ही सौंप दिये थे। परन्तु उन कागजोंके बिना भी उनके पास कम सम्पत्ति नहीं थी। यदि मकान बनाने और सामान खरीदनेतककी ही बात रहती तो सम्भव था कुछ दिनों बाद उन्हें स्थितिका ज्ञान हो जाता, परन्तु उनके आवारा साथियोंके कारण, पहले तो वेश्याओंके नाच-मुजरेसे ही काम चल जाता था,

पर कुछ दिन बाद वे उनके जालमें ऐसे फँसे कि घर आने-तककी उनको फुर्सत नहीं रहने लगी, वे कभी दो-दो दिन और कभी चार-चार दिनतक बागमें ही बिताने लगे। रुपया-पैसा भी जो कुछ हाथमें था सब स्वाहा कर दिया। यहाँतक नौबत आ पहुंचो कि मुनीमजीको कारबार चलानेमें भी रकमकी तंगी पड़ने लगी।

पहले-पहले तो मैंने दो-चार कागज बेचकर काम चला दिया पर वहाँ तो रोजका काम था। अन्तमें एक दिन मैंने पतिदेवको कुछ कड़े ढंगसे समझानेकी चेष्टा की, फिर तो वे ऐसे बिगड़े कि सारी मर्यादाको ही ताकपर रख दिया। उन्होंने साफ शब्दोंमें कह दिया, यह सब तुम्हारी सीखकी बातें सुननेकी मुझे फुर्सत नहीं है। मैं तो मेरे मनके अनुसार मौज उड़ाऊंगा, यदि तुम अधिक दिक करोगी तो यहाँ आना-जाना भी एकदम बन्द कर दूंगा।

इस तरहके उनके विचार सुनकर मैं तो दंग रह गयी, कुछ दिन पहलेतक जो पतिदेव मेरे बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते थे, वे आज इतना शीघ्र ऐसे स्वभावके कैसे हो गये?

मैंने अच्छी तरह पता लगाया तो मालूम हुआ कि बागमें सिर्फ वेश्याओंका ही जमघट नहीं लगता है प्रत्युत

मदिरा देवीकी भी खूब जोरोंसे सेवा होने लगी है। रात-दिन ही होती रहती है, न कोई किसीकी मर्यादा करता है, न कहीं किसीको किसीका संकोच है, मानो वे जो कुछ कर रहे हैं वह सब संसारके नियमानुसार ही कर रहे हैं।

रुपयेके बिना न तो कारबार ही चल सकता है और न जमीदारी ही। फिर बिना मालिककी संभालके तो और भी अंधेर मच जाता है। सब कारिन्दे मनमाने ढंगसे लूट मचाने लगे जिससे बहुत थोड़े दिनोंमें ही सारी सम्पत्ति ठिकाने लग गयी। आरम्भमें तो दो एक बार मैंने सहारा लगाया पर उस अंधेर खातेमें मेरा उस तरहका सहारा गरम तवेपर पानीकी बूंदकी तरह सूख गया।

समयपर सरकारी लगान जमा न देनेसे सारी जमीदारी निलाम हो गयी। कारबार भी रकमके अभावमें खराब हो गया, मकान बगीचे भी लोगोंने कुड़क करा लिये, परन्तु इतने काण्ड हो जाने पर भी उनकी आखें नहीं खुलीं, बाग न सही, वेश्याओंके घर तो थे, वहीं पड़े रहने लगे, जब रुपयेकी चाह होती घर आते,बहुत खुशामद बरामद करते, भविष्यमें उस तरहके कामोंमें हाथ न डालने के लम्बे लम्बे वादे करते, पर जहां रुपये हाथ लगे कि

फिर वही घोड़ा और वही मार्ग। अन्तमें मेरे पासका धन भी पूरा हो चला, तब खुशामदके बदले जोर जुलुम आरम्भ हुआ। पहले तो गाली गलौजसे ही काम चला लेते थे, फिर लात घूसोंकी नौबत आयी और अन्तमें मेरे केश पकड़कर आंगनमें घसीटनेतक की दुःखद अवस्था आ पहुंची। घरमें जो कुछ था सब उड़ गया, यहांतक कि थाली लोटेतक बिक गये।

इधर घरका यह हाल हुआ उधर उन वेश्याओंने भी उन्हें धक्के देकर बाहर निकाल दिया; साथी संगी भी सब नौ दो ग्यारह हुए। जब कहीं ठिकाना नहीं मिला तब मेरी उस टूटी फूटी झोपड़ीमें पतिदेव फिर पधारे; वे बहुत पछताये; कहने लगे मैं नहीं जानता था कि मेरे साथी मुझे इस तरहका धोखा देंगे। यह ठीक है कि मैं भिखारीसे भाग्यवान बन गया था—पिताकी कमाईका पैसा मुफ्तमें मेरे हाथ लग गया था परन्तु वे नाना रूपरंगके मेरे साथी भी मिठाईपर मक्खियोंकी तरह उस धनके साथ ही कहांसे टूट पड़े? जो भी हो अब तो मेरी आंखें खुल चुकी हैं, मैने अच्छे बुरेको भलीभांति परख लिया है। मैं समझता था तुम अपने पासके धनको अपने लिये बचा रखना चाहती हो, इसलिये तुम्हारी सच्ची आप-

कार कर लिया, संध्या समय वे उन्हें अपने साथ लिवा लाये,अपनी समझमें वे बहुत ही बन ठनके आये थे, परन्तु मेरे पास तो उनकी दाल गलनेकी कोई गुंजाइश थी नहीं, मैंने उन्हें उनके असली रूपमें ही देखा।

थोड़ी देरतक दोनों इधर उधरकी बातें करते रहे, फिर किसी कामका बहाना करके पतिदेव बाहर चले गये, मैं उन्हें उनके सामने क्या कहकर रोकती? जब पुरुष ही अपनी पत्नीको किसी अन्य पुरुषके पास इस तरह एकान्तमें छोड़कर चला जाय तब मेरी जैसी स्त्रीके पास सिवा चुप रह जानेके और उपाय ही क्या था?

पतिदेवके बाहर निकलते ही उन्होंने उठकर झटसे घरका दरवाजा बन्द कर लिया, इधर दरवाजा बन्द होनेकी आवाज और उधर बाहर पतिदेवके हँसनेकी आवाज, दोनों एक साथ ही मेरे कानोंमें पड़ी! ऐसा घोर पापमय कांड देखकर मैं एकदम सहम गयी; पर मनमें धीरज धारण करके खड़ी रही। धीरज इसीलिये था कि उस दिन सुबह ही मैंने अपने घरका पिछला दरवाजा जो बाहरसे बन्द रहता था उधरसे खुला रख छोड़ा था जिससे कोई धोखा हो तो भाग निकलनेका रास्ता मिल जाये।

वे महाशय बहुत ही खुशामद भरे शब्दोंमें बातें करने

लगे, जिसका सारांश यही था कि मैं नाहक इस ( याने अपने पति ) के फेरमें पड़ी हुई हूं, वह तो पहले नम्बरका शराबी और वेश्यागामी है, यहांतक कि आज कुछ रुपयोंके लिये वह तुम्हें भी मुझे सौंप गया है। भला ऐसे घृणित विचारोंके आदमीके साथ रहकर तुम किस लाभकी आशा रखती हो ? यदि तुम स्वीकार कर लो तो मैं तुम्हें रानी बनाकर रखूंगा।

प्यारी बहिनों ! उस दुष्टकी इस तरहकी बातें सुनकर मेरे बदनका खून गरम तेलकी तरह खौलने लगा, परन्तु अनुकूल अवसरकी राह देखते हुए मैं उसकी सब बातें सुनती चली जा रही थी।

मुझे बातें सुनती देखकर उसका साहस बढ़ा वह अपने स्थानसे उठकर मेरी तरफ चला। अब और बिलंब करना उचित न समझकर मैंने उसे अपने पास पहुंचनेके पहले ही एक ऐसी लात उसकी छातीमें कसकर जमाई कि वह चारों खाने चित गिर पड़ा, फिर झपटकर उसी पिछवाड़ेके दरवाजेसे झटसे बाहर निकल गयी।

इस तरह अपने बुरे कामोंका पुरस्कार पाकर वह दुष्ट सामनेका दरवाजा खोलकर ऐसा भागा कि फिर इधर आंख उठानेका आजतक नाम भी नहीं लिया।

इस घटनासे मेरे दिलपर कितना सदमा पहुंचा यह या तो मैं जानती हूं या मेरा भगवान भला! सोचनेकी बात है कि जो पति इस लोकमें हमारा भगवान है और परलोकमें भी हम जिसको पानेकी आशा करती हुई मरती हैं, वही पति जब अपनी पत्नीके शीलको लुटवाना चाहे तो इससे बढ़कर शर्मकी बात और क्या हो सकती है? इस घटनासे मुझे इतना दुख हुआ कि एक दफा तो जीमें आया कि जान दे दूं! पर मेरे बाद पतिका और भी पतन हो जायगा, इस संभावनाने मुझे मरने भी न दिया। मैं कई रात लगातार भगवानसे रो-रोकर प्रार्थना करती रही कि हे भगवान! मेरे पतिकी बुद्धि सुधार दो। उन्हें भले बुरेका ज्ञान करा दें। हे दीनानाथ! मुझ अबलाका जीवन बचाओ। मुझे विश्वास है कि सच्चे हृदयसे की गयी प्रार्थना कभी निष्फल नहीं जाती। हुआ भी यही, भगवानने मेरी प्रार्थना सुन ली और पतिदेव भी अपने पतनकी इस अन्तिम सीढ़ीपर पहुंच जानेके बाद कुछ सम्हले, फिर चाहे वह पैसेके अभावसे ही क्यों न रास्तेपर आये हों, पर बहुत थोड़े दिनोंमें ही उनकी वे सब पुरानी आदतें छूट गयीं और वे मेहनत-मजदूरीके कामोंमें लग गये।

यद्यपि आज हमलोगोंको बहुत ही साधारण स्थिति-में रहना पड़ रहा है। पर धन रहते जिस सुखकी हम-लोग कल्पना भी नहीं कर सकते थे, वही हमें अब मिल रहा है।

प्यारी बहिनों! यही मेरी आप बीती है। आशा है कि इससे मेरी बहुत-सी ऐसी बहिने जिन्हें अपनोंसे ही भय उपस्थित हो जाता है लाभ उठाकर उस भयसे बचनेका उपाय ढूंढ़ निकालेंगी।

## नवीं बैठक

—०—

सभानेत्रीजीके आसन ग्रहण करनेपर मंडलका कार्य आरम्भ हुआ। साधारण आवश्यक कामोंके बाद सभा-नेत्रीजीने श्रीमती लक्ष्मीबाईसे आपबीती सुनानेका अनु-रोध किया। उन्होंने आप-बीती इस तरह कहना आरम्भ किया।

प्यारी बहिनों! जब मैं बारह सालकी थी उसी समयसे मेरी यह आप-बीती आरम्भ होती है। मेरी एक बड़ी बहन थी जिसका विवाह हो चुका था। माता-पिताकी हम दो ही सन्तान थी। पिताजी बहुत बड़े आदमी नहीं थे पर वे गरीब भी नहीं कहे जा सकते थे। एक सौ रुपया भाड़ा देकर बालीगञ्जमें एक अलग मकानमें

रहते थे। घरकी मोटर थी, एक रसोइया, दो नौकर, एक दाई, एक दरवान, एक माली – इतने आदमी हमारे यहां नौकर थे। दोनों वक्त अच्छा खाना; अच्छे वस्त्र, टेलीफोन, बिजली, रेडियो, हारमोनियम, मेज-कुर्सी, आलमारी और तरह २ के फर्नीचर आदि—आधुनिक सभ्यताका सारा सामान हमारे यहां मौजूद था।

पिताजीके कई मित्र थे। उन सबका रहन-सहन भी हमारी ही तरह ऊंचे (?) ढङ्गका था। उनमें कोई साधारण स्थितिका था, कोई धनी था, परन्तु परस्पर-का प्रेम सराहनीय था। वे प्रायः एक दूसरेके यहाँ संध्या-को भोजन करते रहते थे। इसलिये पिताजी सप्ताहमें दो तीन बार ही घरमें भोजन करते थे, परन्तु जब वे घरमें खाते थे तो उनके मित्रोंमें से दो चार अवश्य ही हमारे यहां भोजन करनेको आ जाते थे।

न तो माताजी ही पर्दा करती थीं और न मेरे पिता-जीके मित्रोंकी पत्नियां ही। पिताजी मुझे भी कभी कभी अपने इन मित्रोंके घर अपने साथ ले जाया करते थे। इसी तरह उनलोगोंके बच्चे भी उनके साथ हमारे यहां आते जाते रहते थे। सप्ताहमें एक बार हम सब मिलकर शहर-के बाहर किसी बाग बगीचेमें जाया करते थे जहाँ पिता-

जीके रोजके मिलनेवाले मित्रोंके सिवा अन्य बहुतसे लोग भी सपत्नीक आया करते थे और वहां राजनैतिक तथा सामाजिक विषयोंकी चर्चा हुआ करती थी।

बगीचेकी पार्टीमें सम्मिलित होनेवालोंमें गरीब और धनी सभी तरहके लोग रहते थे। पर उन सबके वस्त्र आदि कीमती होते थे-अवश्य ही इस मण्डलीमें गहनोंको बहुत ही कम महत्व दिया जाता था।

मैं तब चौदह सालकी होकर पन्द्रहवें वर्षमें पदार्पण कर चुकी थी तथा अपने मनमें किसी साथीके अभावका अनुभव करने लगी थी। माताजीका भी यही रुख था कि अब मेरा विवाह कर दिया जाय। पर पिताजीकी बातोंसे यह मालूम देता था कि वे अभी साल दो साल और ठहर-कर मेरा विवाह करना चाहते थे। मैं तो इस विषयमें कह ही क्या सकती थी, पर माताजी बीच बीचमें अपने मनके भावोंको व्यक्त करती रहती थीं।

मेरी बड़ी बहिनका विवाह एक धनी परिवारमें हुआ था। परन्तु मेरे पिताजीके सामाजिक विचार उनलोगों-को पसन्द नहीं थे। इससे उस बहिनका आना जाना एक प्रकारसे बन्द-सा ही था। मैं कभी कभी उसके पास चली जाया करती थी, परन्तु बहिनकी ससुरालवाले मुझे इतनी

बड़ी कुवांरी देखकर आपसमें काना-फूसी करने लगते थे। इसलिये मैं भी वहां जाना बिलकुल पसन्द नहीं करती थी।

मेरे पिताजीके मित्रोंमेंसे एक धनी सज्जन थे। उनके एक अठारह सालके पुत्र गोविन्दप्रसादके सिवा और कोई सन्तान नहीं थी। अपने अन्य साथियोंके बनिस्बत इनसे पिताजीका कुछ अधिक प्रेम था। हमसे इनका आर्थिक सम्बन्ध भी था, क्योंकि जब कभी हमारे यहां रुपये पैसेकी कमी पड़ती तो पिताजी इन्हींके यहांसे रुपये मंगाया करते थे। गोविन्दप्रसादभी अन्य लोगोंके बनिस्बत हमारे यहां अधिक आते रहते थे। इसलिये मेरा भी मन उनकी ओर अधिक आकर्षित होता जाता था।

पहले जब मैं छोटी थी तब तो हमलोगोंमें आपसमें खेल कूद तथा अन्य बातें बालकोंकी-सी ही हुआ करती थीं। पर जब दोनों युवावस्थाके द्वारपर पहुंच गये तो बातचीतका ढंग भी पलट गया। यद्यपि हमलोगोंके मिलने-जुलनेमें किसी तरहकी रुकावट नहीं थी, पर अब माताजी अक्सर हमलोगोंके बीचमें आ जाया करती थीं। मैं सच कहती हूं, हमारे बीचमें उनका इस तरहसे आ जाना हमलोगोंको अच्छा नहीं लगता था और किसी न किसी रूपमें हम

दोनोंमेंसे कोई अपना यह भाव प्रकट भी कर बैठता था। पर न जाने वे यह सब समझकर भी हमारे बीचमें क्यों आ पड़ती थीं।

मैं पूरी सोलह और गोविन्दप्रसाद बीस सालके हो चुके थे। पिताजीका विचार यही था कि हमलोगोंकी इतनी अवस्था हो जानेपर हमारा विवाह कर दिया जाय। पर अब रंग ढंगसे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई दे रही थी, जिससे उनका निश्चयपूर्ण होता दिखाई देता हो।

इसी तरह कुछ दिन और निकल गये। इधर माताजी-का मेरे विवाहका तकाजा दिन दिन जोर पकड़ने लगा। पर पिताजीका मौन भंग होनेका कोई लक्षण दिखाई नहीं दिया। हां, एक बात अवश्य नयी दिखाई देने लगी। अब गोविन्दप्रसाद हमारे यहां उतने नहीं आते थे। दो चार दिन बाद यदि आते भी तो वे उड़ी-उड़ीसी बातें करते। मैंने उनसे इसका कारण जाननेका कई बार विचार किया पर संकोचके मारे मुंह नहीं खोल सकी।

एक दिन गोविन्दप्रसादके आते ही मैंने इस बातकी चर्चा की; वे कुछ देर चुप रहे, पर बादमें उनकी आंखोंसे आंसू बहने लगे, वे रूमालसे अपने आंसुओंको पोंछते हुए

बोले, लक्ष्मी! मैं तुम्हारी बातोंका क्या उत्तर दूं? कुछ दिनोंसे पिताजीने मुझे तुम्हारे यहां न आनेकी कड़ी आज्ञा दे रखी है परन्तु मेरा मन नहीं मानता, इसलिये लुक छिपकर यहां आता हूं। बात यह है कि पिताजीने मेरे विवाहके लिये लोकनाथजीकी चम्पाको चुना है। लोकनाथजीके पास हमलोगोंसे भी अधिक धन है। चम्पा भी रूप रंगकी बुरी नहीं है पर मेरा मन उससे नहीं मिलता—मैंने माताजीसे यह बात साफ साफ कह भी दी पर पिताजी अपने निश्चयसे एक अंगुल भी इधर उधर नहीं होना चाहते। ऐसी अवस्थामें क्या करना चाहिये? मैं रातदिन यही सोचता रहता हूं, पर कुछ भी निश्चय नहीं कर सका हूं। तुमने आज पहले ही इस विषयकी चर्चा छेड़ दी, नहीं तो मैं निजमें ही सब बातें तुमसे कहने आया था।

मैं क्या कहूं, गोविन्दप्रसादकी बातें सुनकर अवाक रह गयी। कहां तो मैं उन्हें अपना समझकर निश्चिन्त हुई बैठी थी और कहां अब मेरे सामने यह दारुण समस्या आ उपस्थित हुई।

दोनोंने नाना प्रकारके उपाय सोचे परन्तु किसीपर भी हम एक मत न हो सके। मैं जो उपाय बताती वह उनको नहीं जँचता, और जो वे बताते वह मुझे नहीं जँचता।

अन्तमें हम दोनोंने अपने भावी जीवनका अपने माता-पिताकी इच्छापर बलिदान करनेका ही विचार तय कर लिया।

ऊपरकी घटनाको चार साल बीत चुके हैं। गोविन्द-प्रसादका विवाह चम्पाके साथ हो गया। घरमें अतुल सम्पत्ति रहनेपर भी वे दोनों ही सुखी नहीं हैं। एक ही घरमें रहते हैं, साथ ही खाते पीते हैं,बाहर भीतर भी साथ साथ आते जाते हैं—परन्तु मनका मेल न होनेके कारण एक ही साथ रहने पर भी अलग मालूम देते हैं।

मैं भी एक विधुरके पल्ले बांध दी गयी। विवाहके समय तो उनकी स्थिति अच्छी मालूम दे रही थी पर दो साल बीतते न बीतते उन्होंने अपनी सारी पूंजी फाटकेमें गवां दी। इस समय हमारे दिन एक साधारण गृहस्थकी तरह बीत रहे हैं। न नौकर है न चाकर। सब काम हाथ-से करने पड़ते हैं, मोटर गाड़ीकी तो बात ही क्या, बस और ट्रामके भाड़ेके पैसोंका भी अभाव रहता है।

पिताजीकी अवस्था भी सन्तोषजनक नहीं है, मेरे विवाहकी चिन्ताने ही माताजीको अधमरी बना दिया था। विवाहके बाद छः महीने बीतते न बीतते वे हमलोगों को छोड़कर किसी शान्तिमय स्थानको चली गयीं। पिता-

जी भी इस अवांछनीय जीवनसे उकताकर बिलकुल एकान्तमें रहना पसन्द करने लगे हैं। यहांतक कि मुझसे भी उनकी बहुत ही कम भेट होती है।

मेरी बाल्यावस्थाकी अधिकांश सहेलियां शहरसे दूर रहती हैं। उनके पास मोटरें हैं। जो दो चार मेरी तरह अभागिन हैं, वे या तो घरके बाहर निकलना ही पसन्द नहीं करतीं, यदि कहीं आना जाना भी पड़ता है तो एक बहुत बड़ा रास्ता बस या ट्राममें तय करके भी उन लोगोंके घरतक बिना कुछ पैदल चले नहीं पहुंचा जा सकता।

आप सोच सकती हैं, बराबरीका वास्ता रहते हुए भी अधिकांश साथिनें तो मोटरोंमें बन ठनके अठखेलियां करती हुई अपने मनकी जोड़ीके साथ आवें और मैं अछताती-पछताती किसीका पल्ला पकड़े पैदल पहुंचूं, मेरे लिये कितनी संकोचपूर्ण बात है। पर भाग्यके दोषसे जो भोगना पड़े उसे सर झुकाकर भोगना ही चाहिये।

परन्तु एक बात मैं अवश्य कहूंगी। जो लोग देखादेखी अपना दैनिक खर्च बढ़ा लेते हैं और अपनी सन्तानोंको भी वैसी ही आदत डाल देते हैं वे अवश्य उनके हितेच्छु न होकर शत्रुका-सा ही बर्ताव करते हैं।

यदि यह बात मैं पहलेसे ही जानती कि मेरे पिता

जिस स्वतन्त्रताकी शिक्षा मुझे दे रहे हैं, आगे चलकर वह मेरे लिये बहुत दुःखदायी सिद्ध होगी तो मैं अवश्य ही बिलकुल सादगीसे अपना जीवन व्यतीत करती। पर क्या यह किसी बच्चेके लिये सम्भव है? यदि इसका उत्तर ना है तो ऐसे माता पिताओंको मेरी यह कहानी पढ़कर अपनी सन्तानोंको इस तरहकी शिक्षा देनी चाहिये कि जिससे आगे चलकर उनका जीवन सुखमय हो सके। बस यही मेरी आप बीती है आप जान लें आज भी इस मंडलमें पहुंचनेके लिये मुझे काफी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ा है।

# दसवीं बैठक

आज मण्डलकी दसवीं बैठक है, आवश्यक कार्योंका सम्पादन हो जानेके बाद सभानेत्रीजीने श्रीमती सावित्री देवीको उनकी आप-बीती सुनानेका अनुरोध किया। सभानेत्रीकी आज्ञानुसार श्रीमती सावित्री देवीने अपनी आप-बीती इस तरह कहनी आरम्भ की—

प्यारी वहिनो ! मैं जब आठ सालकी थी तभी मेरी माताजीका स्वर्गवास हो गया था। उस समयकी मेरी अवस्था बहुत ही करुणा-जनक थी। मुझसे बड़े दो भाई थे, एक १० सालका और दूसरा १२ साल का। सबसे बड़ी एक बहन थी, जो इस समय १५ सालकी हो चुकी थी।

बहनका विवाह जब वह १२ साल की थी तभी कर

दिया गया था। उस समय तक वह विवाहके योग्य नहीं हुई थी परन्तु मेरे पिताजी पुराने विचारोंके कट्टर पोषक थे, इसलिये माताजीके लाख विरोध करनेपर भी उन्होंने अबोध अवस्थामें ही उसका विवाह कर दिया।

पूरे दो साल भी नहीं हो पाये थे कि मेरी बहन विधवा हो गयी। माताजीने पिताजीकी काफी भर्त्सना की पर चिकने घड़ेपर पानीकी बूंद ठहरती हो तो उनपर इन बातोंका असर पड़ता ; महीने दो महीने बीतते-बीतते वे इस दुखद् घटनाको भूल गये, पर माताजीके दिलमें यह चोट इतनी गहरी बैठी कि तीन चार महीनेके भीतर ही उन्होंने भी उसी मार्गका रास्ता लिया।

घरमें और कोई बड़ी बूढ़ीके न रहनेसे बड़ी बहनको ही अपना दुःख भुलाकर हम तीनों बहिन भाइयोंको सम्भालना पड़ा। वह बहुत ही स्नेहमयी थी। पिताजी, माताजीके मरनेके बाद, कुछ दिन तक तो हमलोगोंकी सार-सम्भाल करते रहे पर बादमें न जाने किस उधेड़-बुनमें लग गये कि हफ्तोंतक उनके दर्शन ही नहीं मिलते थे।

यों तो; माताजीके समयमें भी वे हमलोगोंसे दूर ही रहा करते थे। इसका खास कारण उनके स्वभावका

चिड़-चिड़ापन ही था। उनके घरमें आते समय यदि दुर्भाग्य वश हममेंसे कोई सामने पड़ जाता तो बिना दो-चार चांटे खाये खैर नहीं थी। इसलिये उन्हें आता हुआ देखकर ही हम सब इधर-उधर लुक छिप जाते थे। पर माताजीके स्वर्गवासके बाद कुछ दिनतक हमारी वह मार-धाड़ बन्द रही प्रत्युत कभी-कभी दो-एक मीठे शब्द भी उनके मुंहसे निकल जाते, पर हमारे मनमें तो उनका इतना भय समाया हुआ था कि उनके इस तरहके बर्ताव-को भी हमलोग काफी सन्देहकी दृष्टिसे ही देखते थे।

बड़ी बहिन हिन्दीमें खूब अच्छी तरह लिख-पढ़ लेती थी। उन्होंने कन्या पाठशालामें नियम पूर्वक अध्ययन किया था; उनकी इच्छा कुछ अंग्रेजी भी पढ़नेकी थी पर पिताजी स्त्रियोंके पढ़ानेके पक्षपाती नहीं थे। बहिनके ससुरजीके दवाबसे उन्होंने बाध्य होकर उन्हें पढ़ाया था, इसलिये बहिनकी यह इच्छा पूर्ण नहीं हो सकी।

मैं भी कन्या पाठशालामें पढ़ने जाती थी। पढ़नेमें मेरा मन खूब लगता था। इसलिये मैं कक्षामें सदा मेरी अन्य सहपाठिनोंसे ऊंची रहती थी। इन दिनों लड़के-वाले सगाई करते समय लड़की कितनी पढ़ी है, इस बातकी भी खोज ढूंढ़ करने लगे हैं। इसलिये लड़कियोंके

अभिभावकगण मेरी पाठशालामें भी अंग्रेजी पढ़ानेकी मांग पेश करने लगे, पर स्कूलके अधिकारियोंने यह स्वीकार नहीं किया। इसलिये बहुतसी बालिकायें पाठशाला छोड़कर दूसरे स्कूलोंमें चली गयीं, पर यहां इस बातकी कुछ भी परवाह न थी।

एक दिनकी बात है, मुझे मास्टर साहब घरपर हिन्दी पढ़ा रहे थे कि पिताजी स्वयं ही वहां आ उपस्थित हुए और मास्टर साहबसे कहने लगे—सावित्रीको अबसे आप अंग्रेजी भी पढ़ाया करें। मास्टर साहबको उनकी बात सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ क्योंकि मेरी तीव्र बुद्धि-को देखकर उन्होंने पिताजीसे पहले कई बार यह प्रस्ताव किया था, पर उन्होंने कभी इसका समर्थन नहीं किया। जो भी हो उन्होंने मुझे अंग्रेजी पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

कुछ दिन बाद इस रहस्यका मुझे पता लगा। पिता-जी एक धनी घरानेमें मेरी सगाई करना चाहते थे, परन्तु पिताजीसे दो बातें स्वीकार करानेके बाद उन्होंने यह सम्बन्ध करना स्वीकार किया। एक तो मेरी चौदह सालकी उमर होनेके पहले वे विवाह नहीं करेंगे। दूसरे मुझे हिन्दीके साथ-साथ कुछ अंग्रेजीका भी ज्ञान प्राप्त करना होगा।

यह विचारोंका सम्बन्ध नहीं था। यहाँ तो थैलियों-का सम्बन्ध होने जा रहा था, इसलिये पिताजी आजतक जिन दो बातोंका विरोध करते चले आ रहे थे—आज अचानक एक ही बातमें उन्हें वे दोनों बातें स्वीकार करनी पड़ी। यही नहीं,उन्हे अपनी इस ढलती अवस्थामें, घरमें जवान विधवा लड़कीके बैठे रहते हुए भी वर बननेको भी बाध्य होना पड़ा। क्योंकि मेरे भावी श्वसुरकी यही आज्ञा थी।

अपनी दो दिनकी अनुपस्थितिके बाद एक दिन एक-दम सुबहके समय लाल पगड़ी बाँधे हुए पिताजीने अपने पीछे चुनड़ीसे ढकी एक षोड़शीको घरमें ला हाजिर किया।

हम सब देखतेके देखते ही रह गये। बड़ी बहिनकी आँखोंमें तो आँसूतक दिखाई देने लगे पर इन सब बातोंमें क्या रखा था। पाँच सात दिनके भीतर ही वह नवा-गन्तुका रमणी सारे घरकी मालकिन बनकर बैठ गयी और हम सब ऐसे मालूम देने लगे मानो बाहरसे आकर किसी दूसरेके यहाँ मेहमान बनके रह रहे हैं।

जिन पिताजीके, माँके रहते भी घरमें बहुत कम दर्शन मिलते थे, वे आजकल अपना अधिकांश समय घरमें ही

बिताने लगे। बड़ी बहिन पाँच सात दिनके बाद ससु-
राल चली गयी। दोनों भाइयोंको बाबाजीके पास काशी-
में भेज दिया गया। सिर्फ मैं ही अकेली घरमें रह गयी।
मुझे भी सारे दिन कैदीकी तरह रहना पड़ता था। पाठ-
शालाका समय होते ही मैं पिञ्जरेकी कैदसे मुक्त पक्षीकी
तरह घरसे निकल भागती थी पर स्कूलकी छुट्टी होते ही
फिर वही एकान्त कोठरी मेरे लिये मुंह बाये बैठी रहती
थी।

अब मास्टर साहबका आना भी बन्द हो गया। कुछ
दिन बाद मेरा स्कूल जाना भी बन्द हो गया। अब तो,
मैं मेरी नयी माताकी रखवाली करनेवाली बन गयी।

जब तक पिताजी घरमें रहते मैं अपनी कोठरीमें रह-
कर अपना पठन-पाठन करती। उनके बाहर जानेके बाद
मेरी नयी माँके पास मुझे हर समय हाजिर रहना पड़ता।
इसी तरह दिन बीत रहे थे। पिताजीका स्वास्थ्य दिन-
दिन गिरने लगा। जैसे जैसे वे रोग ग्रसित होते जाते
थे वैसे-वैसे उनका सन्देही मन और भी सन्देहयुक्त होता
जाता था। पर असलमें ऐसी कोई बात नहीं थी। मेरी
नयी माँ बहुत ही भली थीं पर पिताजीने अपनी इस
गिरती अवस्थामें विवाह करके उनके साथ बड़े अन्याय-

का काम किया था, तो भी वे अपनी इस दयनीय अवस्थाका साहस पूर्वक सामना कर रही थीं।

अब मैं पूरे १४ सालकी हो चुकी थी। बड़े भैया १८ सालके थे। हम दोनोंका ही इस साल विवाह होनेवाला था। मेरा अगहनमें और उनका वैशाखमें। मैं घूंघटमें लपेटके विवाही जानेवाली थी और भैया हँसते हुए एक खुले मुँहवालीके साथ विवाह करनेवाले थे।

दोनों ही विवाह थैलियोंके थे। पिताजी परदाके पक्षपाती थे पर भैयाके ससुरने पचास हजारकी थैली उनको इस शर्तपर देना स्वीकार किया था कि वे अपनी कन्याका विवाह बिना परदेके ही करेंगे। पिताजीने थैलीके लोभसे इसे स्वीकार कर लिया था।

मेरा विवाह हो गया। पुरानी रीतिके अनुसार सब काम हुए, पर उन्होंने दहेजमें एक पाई भी नहीं ली। विवाहके अन्तमें जो पिताजीने उचित समझा मुझे दे दिया।

कुछ दिन बाद भैयाका भी विवाह हो गया। खूब जोरोंका लेन-देन हुआ। पहरावनीमें तो पिताजीको पूरे पचास हजार मिले पर नयी बहूके आनेके साथ ही घरका परदा भी उठ गया।

नयी माताजी किससे परदा करतीं, पर पिताजी उनको लुका-छिपाकर ही रखना चाहते थे। अब पचास हजारकी थैलीके साथ जब खुले मुँहवाली बहू ही घरमें आ गयी, तो बहूके सामने सास कैसे परदा करती।

एक दिनकी बात है, मैं और भाभी मैदानमें घूमने गयीं थीं। मैं अपने ससुरालके नियमानुसार परदा किये हुए थी और भाभी खुले मुँह थीं। यद्यपि यह बिलकुल उलटी बात थी; क्योंकि परदेके नियमसे भाभीका मुंह ढका रहना चाहिये था और मेरा—ननद—का मुँह खुला। पर मेरे पतिदेव साथमें थे, इसलिये मुझे मुँह ढकना पड़ा था। उधर भाभी किसीसे परदा करती ही नहीं थी। इसलिये यह उलटी बात दीख रही थी।

हम लोग विक्टोरिया मेमोरियलके किनारेवाली सड़क पर घूम रहीं थीं। हम दोनोंने देखा कि एक महाशय दूरसे हमारी ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। कोई देखा करे हमें इससे क्या प्रयोजन था। हम दोनों उधर ही बढ़ी चली जा रही थीं। जब उनके बहुत पास पहुंच गयी तो मैंने देखा वे तो पिताजी हैं—उस समय मेरे पतिदेव कुछ पीछे रह गये थे। हम दोनों उनसे कुछ आगे-आगे चल रही थीं—मैंने अपना मुँह खोल दिया। कहां तो वे

दूसरोंकी बहू बेटी समझकर हमें घूर रहे थे कहां अपनी बहू और बेटीको सामने देखकर लज्जाके मारे जमीनमें गड़ गये। इसीको उचित पुरस्कार कहते हैं।

इस एक साधारणसी घटनाके बाद पिताजीके स्वभावमें एकदम परिवर्तन हो गया और अब हमारे घरके रहन सहनमें काफी परिवर्तन हो गया है।

## ग्यारहवीं बैठक

—*—

आवश्यक कामोंके सम्पन्न हो जानेपर सभानेत्रीजीने श्रीमती अनुसूया देवीसे अपनी आप बीती सुनानेका अनुरोध किया।

श्रीमती अनुसूयाजीने अपनी आप-बीती इस तरह कहना आरम्भ किया। प्यारी बहिनो! यद्यपि मैं जन्मके समय दोनों आंखवाली पैदा हुई थी पर चेचककी कृपासे मैं एक आँख खो बैठी। आप देख रही हैं मेरे चेहरेपर आज चेचकका एक भी दाग नहीं है। पर न जाने इस आंखने ही क्या अपराध किया था जो इसे एक दमसे फांसीका दण्ड दे डाला गया।

मेरे माता पिता बहुत ही गरीब आदमी थे, इसलिये

यों ही मेरे विवाहकी भावी चिन्ता उन्हें व्याकुल किये हुए थी फिर इस आंखने तो उन्हें और भी संकटमें डाल दिया। लेकिन यह तो भगवानकी मर्जीकी बात थी, इसमें मनुष्य कर ही क्या सकता है, अवश्य ही मनुष्यके करने योग्य ऐसा एक भी उपाय उठा नहीं रखा गया था जिससे मैं फिर अपनी पूर्वावस्थाको प्राप्त कर लूं पर सब उपाय निष्फल सिद्ध हुए।

हमारे हिन्दू समाजमें साधारणतया यही विश्वास जमा हुआ कि चेचककी अधिष्ठात्री एक मात्र सीतला देवी है, इसलिये चेचक निकलनेवाले बालकके लिये दवा-पानीके वनिस्पत सीतलाजीकी आराधना ही एक मात्र उपाय समझा जाता है। मेरे विषयमें भी यही बात लागू होना स्वाभाविक ही था। मेरे आँख खो देनेके बाद माता पिताने उसे अच्छी करानेका जितना उद्योग किया, मेरी चेचककी बीमारीका उचित इलाज करानेका यदि उस समय इसका दसवां हिस्सा उपाय भी किया होता तो संभव है मैं एक आंखवाली न बनती, पर अपने पुराने विचारोंके अनुसार उस समय तो एक मात्र श्री सीतला देवीजीकी मान-मनोती पर ही रह गये और जब दवापानी करनेकी हदसे रोग बाहर निकल गया,तब फिर चाहे कितना अधिक

परिश्रम क्यों न किया जाता, उससे क्या लाभ हो सकता था ?

यद्यपि मैं कानी हो गयी थी ; और कानी होना खासकर कन्याके लिये एक महान् अनिष्टकी बात है, पर मेरी बांई आंख .चली जानेसे बड़ी बूढ़ियोंका यह खयाल था कि मेरा भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है, पुरुष दाहिनी आंखसे और स्त्रीके बांई आंखसे कानी होनेपर लोग इसे सौभाग्यका चिह्न मानते हैं और आगे चलकर मैं सौभाग्यकी अधिकारिणी बन भी गयी, जैसाकी मेरी आजकलकी स्थितिको आप लोग देखकर विश्वास कर सकती हैं। परन्तु उस समय ऐसी धारणा बनानेका माता पिताको कोई भी कारण नहीं दिखाई देता था, बल्कि उन्हें तो मेरा भविष्य पूर्ण अन्धकारमय ही दिखाई दे रहा था, हां, एक बात अवश्य हुई कि मेरे आंख खो देनेके पहले हम लोगोंके दिन बहुत कठिनाईसे व्यतीत हो रहे थे पर कुछ दिन बाद हमारी यह कठिनाई बहुत कुछ दूर हो गयी।

पिताजी जिस दफ्तरमें काम करते थे, उसमें लोहेका कारबार होता था, लोहेके बाजारमें अचानक तेजी आ जानेसे मालिकोंको बहुत अधिक लाभ हो गया जिसके फल-स्वरूप पिताजीके वेतनमें भी अच्छी वृद्धि हो गयी,

जिससे उनकी गृहस्थी सम्बन्धी प्राय: सभी कठिनाई दूर हो गयी। अवश्य ही यह सब एक दिनमें नहीं हो गया था, इसमें प्राय: तीन साल बीत गये थे। जब मेरी आंख गयी थी उस समय मैं पांच सालकी थो और अब मैं आठ सालकी हो गयी थी।

जब मैं छः सालकी थी, पिताजीने मुझे कन्या पाठ-शालामें भरती करा दिया था, दो सालमें मैं हिन्दी मजेमें लिखना पढ़ना सीख गयी थी, पट्टी पहाड़ा भी याद हो गया था। मेरी बुद्धि काफी तेज थी ; अन्य बालि-काओंको जितना सीखनेमें चार साल लगता है, उतना मैंने दो सालमें ही सीख लिया था। जिससे पाठशालाकी अध्यापिकायें भी मुझसे बहुत प्रसन्न रहती थीं।

यद्यपि मेरी एक आंख जा चुकी थी पर भगवानकी कृपासे देखनेमें मैं कानीसी मालूम नहीं होती थी। आंख भली चंगीकी तरह ही खुली रहती थी ; सिर्फ ध्यानसे देखनेपर उसके चले जानेका आभास मिलता था, आंखकी और सब बातें ठीक थीं सिर्फ रोशनीवाला काला स्थान सफेद हो गया था और जहांसे रोशनी पैदा होती है वह शक्ति बिलकुल नष्ट हो गयी थी तथा,उस आंखका आकार

भी कुछ छोटा हो गया था। मैं किसीकी ओर ताकती तो ऐसा मालूम होता कि मैं उसकी ओर टेढ़े कटाक्षसे देख रही हूं। यद्यपि मेरा इस तरह देखना बिना किसी उद्देश्यके होता था, पर जिसकी ओर मैं देखती थी वह यही समझता था मानो मैं उसपर टेढ़ा कटाक्ष फेंक रही हूं, आगे चलकर जब मैं सयानी हो गयी तब मेरे इस तरहके देखनेसे मुझे कई बार आफतमें डाल दिया था, पर भगवानकी दयासे मैं इस तरहके संकटोंसे बराबर बचती चली आयी, और अन्तमें इसी मेरे टेढ़े कटाक्षने मेरे सौभाग्यको जगा दिया।

मेरा पढ़ना लिखना बराबर जारी रहा, साथ ही पाठशालामें मैंने रसोई बनाना, कशीदा काढ़ना, कपड़े धोना तथा रंगना, सिलाई करना, हारमोनियम बजाना आदि भी सीख लिया।

जैसे जैसे मेरी उमर बढ़ रही थी मेरी योग्यता बढ़नेके साथ-साथ मेरा रंग रूप भी निखर रहा था, यद्यपि मैं एक आंखसे कानी थी पर देहका रंग और लावण्यके हिसाबसे मैं परम सुन्दरी समझी जाती थी।

इधर जिस तरह मेरी योग्यता और सुन्दरताका विकाश हो रहा था दूसरी ओर मुझे सयानी हो गयी देख-

कर माता-पिताको मेरा विवाह करनेकी चिन्ता भी अधिक हो गयी थी। उस समय पिताजीकी आर्थिक अवस्था पहले जैसी कमजोर नहीं थी, यद्यपि उन्हें मेरे कानी होनेका अत्यंत दुःख था पर साथ ही वे मुझे भाग्यवान समझकर मनमें एक छिपी हुई आशाकी बेलिको सींच रहे थे। उनका यह विश्वास बढ़ता जा रहा था कि मेरी बांई आंखका चला जाना चाहे शारीरिक दृष्टिसे एक ऐब ही क्यों न माना जाय पर सौभाग्यकी दृष्टिसे यह अवश्य ही लाभ दायक है। और अपनी आर्थिक अवस्था सुधर जाना वे इसीका कारण मानते थे।

पाठशालाकी अन्तिम परीक्षा मैंने पास करली। मैं सर्व प्रथम आई। जिस दिन सनद् पत्र देनेका जलसा हुआ उस दिन व्याख्यान दाताओंने मेरी काफी प्रशंसा की, दूसरे दिन अखबारवालोंने भी लंबे-लंबे लेख लिखे, क्योंकि अपने प्रान्त भरमें मेरा स्थान सर्वोपरि आया था और सरकारी वजीफेके साथ-साथ अपनी पाठशालाका वजीफा भी मुझे ही मिला था। इसके सिवा कई सज्जनोंने मुझे भिन्न-भिन्न विषयोंकी योग्यता पर स्वर्णपदक भी प्रदान किये थे। इस तरह बाहर और भीतर मैं काफी प्रसिद्ध हो गयी।

आये दिनकी विवाह सम्बन्धी कठिनाइयोंके कारण होनेवाली दुर्घटनाओंको लेकर नवयुवकोंमें खासी हलचल मच रही थी। हालकी बात थी, एक पन्द्रह सालकी कन्याने अपने विवाहके लिये माता-पिताको अत्यन्त परेशान देखकर अपने शरीरपर किरासिन तेल डालकर आत्महत्या कर ली थी। दूसरी एक घटना और हो गयी थी जिसमें एक बालिकाने संखिया खाकर अपने माता-पिताके कष्ट-को दूर कर दिया था।

यद्यपि इस तरहकी बातें आये दिन होती रहती हैं पर इसके लिये न तो लड़कोंके लोभी माता-पिताको ही विचार करनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है और न लड़के ही इस अनर्थको रोकनेके लिये अपना कोई कर्तव्य समझते हैं।

एक दिन कमर्सियल कालेजके प्रिंसिपलने अपने छात्रों की सभा बुलाकर हिन्दू समाजकी इस विषयकी उदासी-नताको दूर करनेका उपाय सोचनेका अनुरोध किया। उन्होंने अपने भाषणमें बतलाया कि आज हमारे देशमें त्यागी युवकोंकी कमी नहीं है। ऐसे हजारों युवक दिखाई दे रहे हैं जो अपना सब तरहका सुख छोड़कर देशके

उत्थानके भिन्न भिन्न कामोंमें लगे हुए हैं। जिन्हें न तो विवाहित जीवनके सुखकी ही परवाह है और न वे पैसेके लिये ही लालायित हैं। वे तो बिना अपने कष्टोंकी ओर ध्यान दिये ही एकमात्र देश सेवामें ही लगे हुए हैं। उसी तरह यदि आप लोगोंमेंसे भी कुछ युवक इस बातके लिये तैयार हो जायं कि समाजकी ऐसी कन्यायें जिनका विवाह उनके माता-पिताकी गरीबी और उनके रंग रूपमें कुछ न्यूनताके कारण, होनेमें कठिनाई पड़ रही है, उनके साथ वे बिना किसी तरहके संकोचके विवाह कर डालें।

यह बात ठीक है कि एक सुन्दर युवकको किसी असुन्दरीके साथ सम्बन्ध जोड़नेमें कुछ कठिनाईका सामना करना पड़ सकता है। उसी तरह किसी गरीब माता पिताको असन्तुष्ट करके उनकी नाराजीके साथ-साथ अन्य कई तरहकी आफतें भी मोल लेनी पड़ सकती हैं, पर ये सब कठिनाइयां उन कठिनाइयोंसे जो आज हमारे देश सेवक भोग रहे हैं बहुत कम रहेंगी।

मेरा तो ऐसा खयाल है कि ऐसी सुन्दरियोंसे जिनके माता-पिताओंने काफी धन देकर युवकोंको खरीदकर विवाह सम्बन्ध स्थापित किया है, वे बिना दहेज देनेवाले गरीबोंकी कुरूपा युवतियां कहीं अधिक सुख पहुंचा-

नेवाली होती हैं।

मैं ऐसे दो युवकोंको जानता हूं, जिनमेंसे एकने तो एक गरीबकी कन्याके साथ विवाह किया था दूसरेने एक धनीकी कन्यासे। दोनों ही आज उच्च सरकारी पदों-पर आसीन हैं और काफी पैदा कर रहे हैं, पर उस धनी माता-पिताकी पुत्रीके बनिस्पत गरीबकी कन्यासे विवाह करनेवाला बहुत अधिक सुखी है। बल्कि यह कहना चाहिये कि उस धनी माता-पिताकी पुत्रीके साथ विवाह करनेवाला आज नर्क-यातना भोग रहा है।

इसका कारण भी है, धनियोंकी कन्याओंको यह अभिमान रहता है कि हमारे माता-पिताओंकी कृपासे ही हम इन्हें पत्नीके रूपमें प्राप्त हुई है, इसलिये वे हर समय उनपर अपनी श्रेष्ठता दरसानेका प्रयत्न करती रहती है, पर गरीब माता-पिताकी कन्याका यह खयाल रहता है, कि मेरे पतिने अपनी उदारतासे मेरे साथ विवाह करके मेरा उद्धार किया है इसलिये वह सदा उसका आदर करती रहती है। उसी तरह कोई युवक किसी अंगहीन या कुरूपाके साथ विवाह करके भी किसी सुन्दरीके साथ विवाह करनेके बनिस्पत कहीं अधिक सुखी हो सकेगा।

उपस्थित छात्र मण्डलीपर अपने प्रिन्सिपलके इन

युक्तिपूर्ण बचनोंने काफी प्रभाव डाला, और उनमेंसे कई सहृदय नवयुवकोंने गरीब और कुरूप या अंगहीनाके साथ विवाह करनेकी प्रतिज्ञा की।

प्रिन्सिपल साहबने ऐसे युवकोंकी एक मण्डली अथवा सभा कायम कर दी। यद्यपि उस समय हजारोंकी संख्यामें वहां छात्र उपस्थित थे पर ऐसे साहसी कुल दस ग्यारह ही युवक सामने आये। उन्होंने उन युवकोंको उनके इस साहसपर बधाई दी और स्वीकार किया कि मैं अन्य कालेजोंमें भी इस तरहकी सभायें बुलाकर युवकोंको यह सन्देश सुनानेका प्रयत्न करूंगा।

अपने इस वचनका उन्होंने पालन भी किया और भिन्न भिन्न कालेजोंमें सभा करके लगभग पचास युवकोंको उन्होंने इस मण्डलीके सदस्य बना लिये।

यद्यपि इस नारी उद्धार समितिको स्थापित हुए कई मास हो गये थे, पर संयोगवस इस विषयकी अखबारोंमें ठीक उसी दिन सूचना निकली जिस दिन मेरे पदवी ग्रहणके जलसेका कार्य विवरण प्रकाशित हुआ था, इसलिये उस समितिकी पहली बैठकमें यही प्रश्न सामने आया, क्योंकि मेरे पिताजीने मेरे अंग हीन होनेके कारण अपनी

गरीबीको दिखाते हुए किसी योग्य युवकको सामने आकर मेरे साथ विवाह करनेका अनुरोध किया था।

उस समय उन लोगोंमें काफी उत्साह फैल रहा था, इसलिये एक नहीं कई युवक मेरे साथ विवाह करनेको तैयार हो गये। परस्पर खूब वाद-विवाद हुआ अन्तमें यह तय हुआ कि मेरा फोटो मंगाया जाय और फोटो देखनेके बाद इसका अन्तिम निर्णय किया जाय।

चित्रके लिये पिताजीको लिखा गया, उन्होंने तुरत ही मेरा फोटो उतराकर समितिके मन्त्रीके पास भेज दिया। मन्त्रीने पुनः सभा बुलाई और उनके सामने मेरा चित्र उपस्थित कर दिया। परन्तु चित्र देखकर मेरे ऐबका मेरे एक आंख नहीं है, इसका किसीको पता नहीं लगा। वे सबके सब आश्चर्यमें पड़ गये, सोचने लगे यह क्या गोरख धन्धा है, लड़कीका पिता स्पष्ट शब्दोंमें इसे एक आंखसे कानी बता रहे हैं। अन्तमें यही निर्णय हुआ कि समितिके दो सदस्य मुझे देखने जांय और वे लोग मुझे देखकर सब बातें समितिकी आगामी बैठकमें उपस्थित करें, बादमें इस विषयपर विचार किया जायगा।

पिताजीसे समय निश्चित करके दो युवक हमारे यहां आये और मैं बिना किसी तरहकी टीमटामके अपने स्वाभाविक

रूपमें उनसे मिली। जब युवक मुझसे बातें करनेको मेरी तरफ मुखातिब हुए और मैंने उनके प्रश्नोंका उत्तर देनेको उनकी ओर ताका, तो मेरे उस ताकनेने उनपर जादू चला दिया। यद्यपि इस तरहसे कटाक्षयुक्त ताकना मेरा स्वाभाविक ताकना था, पर उसका असर ठीक इच्छा पूर्वक ताकनेका-सा हो गया; वे मेरे इस तरह टेढ़ी नजरसे उन्हें ताकनेसे लजा गये और अपनी आंखें नीची करके बातें करने लगे।

मेरी सुन्दरतामें तो कोई कसर थी ही नहीं, मेरी बातोंका भी उनपर काफी असर पड़ा। मैंने साफ शब्दोंमें उन्हें बताया कि मेरी बांई आंख बिलकुल चली गयी है, उससे मुझे कुछ भी दिखाई नहीं देता। मेरी यह बात सुन-उन्होंने एक बार फिर मेरी ओर ताका और मैंने भी अपने स्वाभाविक ढंगसे उनकी ओर देखा, पर इस स्वाभाविक देखा देखीने पहलेसे भी कुछ अधिक उनके मनको मेरी ओर आकर्षित कर लिया।

दूसरे युवक बगलमें बैठे हुए थे, इस लिये मेरे देखनेका असर उनपर नहीं पड़ सकता था। यहां तो ठीक जनक जीकी फुलवाड़ीकी तरह राम और सीताका ही साक्षात् हो रहा था, वे बिचारे दूसरे युवक तो लक्ष्मणजीकी तरह

साक्षी गोपाल मात्र ही बने हुए थे।

जो सज्जन मेरे सामने बैठे थे, मैं सत्य कहूंगी उनकी ओर मेरा मन भी आकर्षित हो गया था। हमलोगोंकी पहली देखा-देखीमें ही न जाने कौनसी ऐसी बात हो गयी थी कि उनकी ओर देखते ही—हम लोगोंकी चारों आँखे मिलते ही मेरे अन्तस्तलमे एक ऐसी बिजली-सी दौड़ गई कि जिसका अनुभव उस दिनसे पहले मुझे कभी नहीं हुआ था। मैं पाठशालामें और घरमें सभी जगह निसं-कोच सबसे मिलती जुलती थी पर उस मिलनेमें और इस मिलनेमें इतना अन्तर कैसे पड़ा इसका मुझे निजमें ही अनुमान नहीं हुआ।

मुझसे कुछ इधर उधरकी बातें करके वे पिताजीके पास गये जो बगलके घरमें ही बैठे हुए थे। पिताजीने उन्हें बातों ही बातोंमें यह बात समझा दी कि यदि वे चाहते तो बिना कुछ कहे सुने ही किसी योग्य युवकके हाथ मुझे सौंप सकते थे पर उसका परिणाम ठीक नहीं होता। जिस दिन उसको यह पता चलता कि यह अङ्ग-हीन है, उसी दिनसे यह सर्वगुण सम्पन्न होने पर भी उसकी आंखोंसे गिर जाती और इसका जीवन दुःखमय हो जाता। पर आज सब बातें स्पष्ट कर देनेसे जो काम

होगा उसमें आगे चलकर कोई हानि होनेकी संभावना नहीं रहेगी।

मैं जानता हूं, आजकल ऐसे बहुतसे माता पिता हैं जो कौशलसे अपनी कन्याओंके ऐबोंको छिपाकर, धोका देकर उनका विवाह कर देते हैं, पर इसका परिणाम अधिकाँश में ठीक नहीं उतरता। इसी लिये मैंने सारी बातें स्पष्ट करके ही इसका विवाह करनेका निश्चय किया है। आप लोगोंने सब बातें आंखोंसे देख ही ली हैं अब जैसा आपकी समितिका विचार हो मुझे सूचित कर दगे।

समितिकी पुनः बैठक हुई, दोनों युवकोंने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी। पर साथ ही दूसरे युवकने, दोनों प्राणियोंकी—अपने साथी और अङ्गहीन युवतीकी देखा-देखी की कथाका भी कुछ नोन मिरच लगाकर वर्णन कर दिया।

सदस्योंने परिस्थिति भली भांति समझ ली और मेरे भावी पतिदेवको स्पष्ट मत प्रकट करनेका अनुरोध किया। उन्होंने मेरे साथ प्रसन्नतापूर्वक विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की और उनकी इस इच्छाको सर्वसम्मतिसे समिति के सदस्योंने स्वीकार कर लिया।

वे अपने पिताके एकलौते पुत्र थे, उनके घरमें अथाह सम्पत्ति थी, उनकी इच्छाको उनके पिता तक पहुंचानेका काम उनके साथीको सौंपा गया जो मेरे यहां उनके साथ गये थे।

उनके पिताजीने सब बातें सुनके अपने पुत्रकी इच्छाके अनुकूल ही अपनी सम्मति दे दी। उन्होंने कहा कि घर गृहस्थी तो उसको चलानी है फिर इस विषयमें उसकी राय ही सर्वोपरि मानना हम माता पिताओंका परम धर्म है, फिर इस कन्याकी योग्यताको सुनकर तो मैं और भी प्रसन्न हुआ हूं।

समितिके उन्हीं सदस्यने मेरे पिताजीसे मिलकर विवाह सम्बन्धी सब बातें तय करा दी और यथा समय हम लोगोंका विवाह हो गया।

उस दिनको आज प्रायः सात साल बीत चुके हैं। इस लम्बे अर्सेमें ऐसा एक भी मौका नहीं आया कि हम दोनों में कभी मतभेद हुआ हो।

मेरे विवाहके बाद उस समितिके उद्योगसे और भी कई ऐसे ही कन्याओंके ऋणसे दुःखी माता पिताओंका उद्धार हुआ है, पर इसकी गति बहुत ही धीमी है। उत्साही नवयुवकोंको चाहिये कि इस विषयमें ऐसी

उत्पन्न न हो जाय क्योंकि कोई भी आदमी मेरे सामने बैठकर या खड़े होकर बात करेगा और मैं उसकी ओर आंख उठाउंगी तो यही दृश्य सामने आ जायगा।

उन्होंने मेरे इस रहस्यको भलिभांति जान लिया और बादमें फिर कभी मेरे विषयमें उनके मनमें विकार उठनेका मौका नहीं आया।

# श्री केडियाजीकी

## अन्य रचनाएं

| | |
|---|---|
| अस्फुट कलियां | १) |
| दूर्वादल | ॥) |
| समाजके हृदयकी बातें | १॥) |

छप रहा है

छूत या अछूत ( सामाजिक उपन्यास )

हिन्दी पुस्तक एजेंसी

२०३, हरिसन रोड, कलकत्ता ।